॥ श्रीहरिः ॥

श्रीहनुमत्स्तोत्र

प्रस्तुति

ब्रह्मलीन पूज्य स्वामी श्री अखण्डानन्दजीका 'श्रीहनुमत्स्तोत्र' उनके तिरोभावके बाद प्रकाशमें आ रहा है, इससे एक ओर तो दुख होता है कि पूज्य महाराजजी नहीं हैं, दूसरी ओर सन्तोष भी होता है कि वे बहुत बड़ा सम्बल छोड़ गये हैं । भगवदाराधनके लिए भगवद्भक्तका आराधन ही सन्त जन पहले करते आये हैं, गोस्वामी तुलसीदासने भी रामचरित-मानस लिखनेके पूर्व श्रीहनुमानजीकी उपासना की और उन्हींकी कृपासे श्रीरामचरितका

ऐसा मनोरम वितान उनसे वन पड़ा ।

पूज्य महाराजजीने श्रीहनुमानजीके विग्रहमें साक्षात् पराविद्याके सप्राण रूपका दर्शन किया, यह स्तोत्र साधनाकी दृष्टिसे तो सिद्ध है ही, काव्य योजनाकी दृष्टिसे भी अपूर्व है । महाराजजीने श्री हनुमानजीकी स्तुति ब्रह्मज्ञानकी पात्रता प्राप्त करनेके लिए की है, किसी भी अन्य प्रयोजन या कामनासे नहीं । इसलिए इस स्तोत्रका स्वर बहुत उदात्त और गम्भीर है । वे जब मारुतिकी आरती करनेकी बात सोचते हैं तो वे देहको दीया, जीवनको तेल, प्राणोंको बाती, जीवात्माको ज्योति, वाणी मात्रको घण्टेकी ध्वनि

और चपलता मात्रको नृत्यके रूपमें परिवर्तित करके स्वको ही आरती बना देते हैं–

देहः पात्रं जीवनं स्नेहधारा वर्तिः प्राणा ज्योतिरात्मैष जीवः ।
वाचो ध्वानं चापलं नृत्यमित्थं स्वारार्तिक्यं मारुतेश्चिन्तयेऽहम् ।।

अव इससे ऊँची कविता और क्या होगी ! पूज्य महाराजजीने श्रीहनुमानजी का सबसे विलक्षण गुण यह बतलाया है, नित्य मुक्त रहते हुए भी वे अपनेको परतन्त्र ही सदा बनाये रखते हैं और व्याख्या करते हैं कि वस्तुतः कोई भी विरक्त पुरुष देहको स्वतन्त्र

नहीं मानता है क्योंकि यह शरीर पंचभूतोंके वशमें रहता है और अन्य वस्तुओं का मुँह देखता रहता है । हनुमानजीकी विलक्षण परतन्त्रताका स्मरण करके मिथ्या स्वातन्त्र्यका भ्रम दूर हो जाता है, वह जिस जिससे जो मिलता है, उसको मानता है कि वह पर अर्थात् परमात्मासे मिल रहा है, पराम्बासे मिल रहा है तब बहुत तृप्ति पाता है—

देहस्यापारतन्त्र्यं कथमनुमनुतां शेमुषीमान् विरक्तः
अन्नाम्भोवह्निवायुप्रभृतिपरवशस्याचितोऽन्योन्मुखस्य ।
आहारेहापिपासाव्यसनशतजरामृत्युरोगार्दितस्य

ब्रह्मज्ञः श्रीहनूमच्चरणमनुसरन्नष्टमोहो मनस्वी ।।

अद्वैत भावसे श्रीहनुमत्स्तुति सम्भवतः यह पहली ही है । यह महाराजजीसे ही सम्भव था कि अद्वैतवेदान्तके पारंगत होते हुए भी अद्वैतभावके साधक प्राणतत्त्वकी ऐसी उच्चस्तरीय उपासनाकी भूमि तैयार कर सकते हैं ।

मुझे यह सूचना है कि पूज्य महाराजजीको हनुमानजीकी कृपा मिली थी और उन्हें परं ज्योतिके दर्शन मिले थे । यह स्तोत्र इसलिए एक सिद्ध यन्त्रकी तरह प्रभावकारी होगा, इसका मुझे पूरा विश्वास है ।

आनन्द जयन्ती
१२-८-८८

-विद्यानिवास मिश्र
कुलपति, काशी विद्यापीठ

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीहनुमत्स्तोत्र

॥ श्रीहरिः ॥

(१)

सिन्दूराङ्गं वरोद्यन्मदनयनयुगं मूर्तदिव्यानुरागं
काश्मीरालिप्तभालं ललिततुलसिकामालमुत्तानबालम् ।
हर्षोन्मत्तं हरीन्द्रं रघुकुलतिलकध्यानसक्तं स्मिताञ्चद्-
वक्त्रं रोमाञ्चचञ्चत्तनुमरुणपटं मारुतिं चिन्तयेऽहम् ॥

॥ श्रीहरिः ॥

(१)

सिन्दूरके समान रक्त-वर्ण हैं अथवा प्रत्येक अङ्गमें सिन्दूरका लेप किया हुआ है, दोनों नेत्रोंमें प्रेमका किञ्चित् मद (नशा) छाया हुआ है—मानो दिव्य अनुराग हो मूर्तिमान हो रहा हो, केशरका तिलक ललाटपर शोभा पा रहा है, तुलसीकी ललित माला गलेमें है, पूँछ ऊपरको उठी हुई है, आनन्दसे उन्मत्त हो रहे हैं, रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रके ध्यानमें मग्न हैं, मुखपर मुस्कान छलक रही है, शरीरमें रोमाञ्च हो रहा है, शरीरपर रक्त-वस्त्र धारण किये हुए हैं—ऐसे कपिराजश्री नित्य-प्रसन्न मारुति, श्रीहनुमानजीका मैं चिन्तन कर रहा हूँ ।

(२)

दीव्यत्कल्पद्रुमाधो मनुरचितमहायोगपीठे स्फुरन्तं
धीरोदात्तं महान्तं स्थिरनयनयुगोल्लासिशान्तिं किरन्तम् ।
ब्रह्मैक्यं चिन्तयन्तं भ्रमभवमखिलं भेदमुन्मूल्य सन्तं
स्वान्तश्चित्ते वसन्तं गुरुपरमगुरुं मारुतिं चिन्तयामि ॥

(२)

जगमगाते हुए कल्पद्रुमके नीचे मन्त्र-रचित महायोग पीठपर स्फुरित हो रहे हैं, धीरोदात्त नायकके रूपमें बैठे हुए हैं, रोम-रोमसे महत्ता प्रकट हो रही है; दोनों नेत्रोंकी स्थिरतासे शान्ति बिखेर रहे हैं, ब्रह्म और आत्माकी एकताका चिन्तन कर रहे हैं, भ्रान्ति-जन्य समग्र भेदको दूर करके अपने स्वरूपमें स्थिर हैं—मैं अपने हृदयमें सदा विराजमान गुरु, परम गुरु मारुत-नन्दन श्रीहनुमानजीका चिन्तन कर रहा हूँ ।

(३)

पित्ताधिक्योत्थतापोन्मथिततनुमिमं शैशवे मूर्च्छितं च
मृत्योर्मूर्त्याभिपन्नं कृतकटुरवया शूलकुन्तादिमत्या ।
धावन् यो मामरक्षत् करकलितगदो द्रावयँस्तां धृताद्रिः
हार्दाकाशे स नित्यं स्फुरतु मम मनः प्राणसर्वस्वभूतः ॥

(३)

बाल्यावस्थामें पित्तकी अधिकतासे मेरे शरीरमें ज्वर बढ़ गया और मैं मूर्च्छित हो गया। उस समय मृत्यु मूर्तिमान होकर हाथमें शूल-सांगी लेकर बड़े जोरसे चिल्लाती हुई मुझे मारनेके लिए दौड़ी। उसी समय हाथमें गदा और पर्वत लेकर श्रीहनुमानजी दौड़ पड़े, मृत्युको भगा दिया, मेरी रक्षा की। वे मेरे मन और प्राणके सर्वस्व श्रीहनुमानजी मेरे हृदयाकाशमें सर्वदा जगमग-जगमग झलकते रहें।

(४)

शान्तो दान्तो मुमुक्षुर्विरतविषयधीर्विश्वमन्तर्विविच्य
श्रद्धावित्तोऽनुगच्छेद् गुरुवरचरणं को नु लोकेऽल्पसारः।
सर्वेषां साधनानामतिविरहमिहालोच्य चित्ते विषण्णः
सम्प्राप्तस्त्वां हनूमन्नुपसृतजनतावत्सलाङ्गीकृतोऽहम् ॥

(४)

शान्त, दान्त, तितिक्षु-मुमुक्षु श्रद्धाकी पूंजी लेकर और विश्वसे वैराग्य करके गुरुके चरणोंमें शरणागत हो, तब उसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। परन्तु, आज अल्प-शक्ति, अल्प-वैराग्य ऐसा कौन है जो गुरु-चरण-शरण-वरण करे ? मैंने देखा, विचार किया कि मेरे जीवनमें तो सम्पूर्ण साधनोंका अत्यन्ताभाव है। भीतरसे बड़ा विषाद हुआ, निराश हो गया। फिर मैं आपके चरणोंकी शरणमें आया और हे शरणागतवत्सल ! तुमने मुझे स्वीकार कर लिया—धन्य है तुम्हारी करुणा !

(५)

अनिर्वाच्यं किञ्चिन्ननु निगमयन्तु श्रुतिगिरो-
ऽवगाहन्तां गाढं मधुररससिन्धुं प्रणयिनः ।
वयं त्वन्यान्धन्याननवकलयन्तः स्वहृदये
कपीन्द्रं ध्यायेम ज्वलदनलसंकाशममलम् ॥
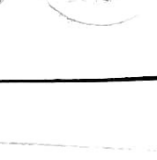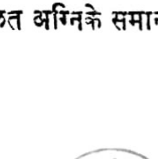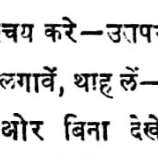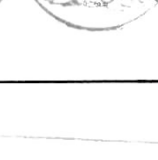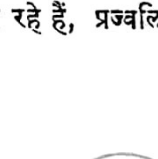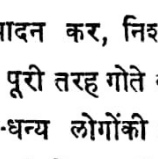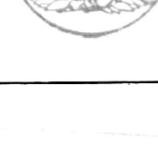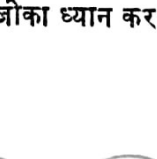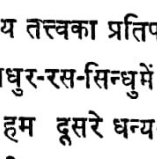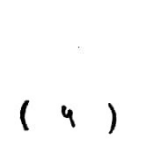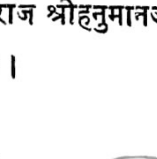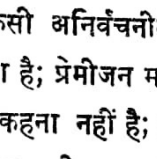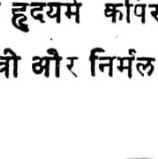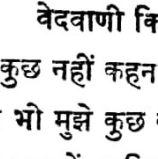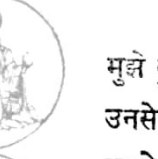
(५)

वेदवाणी किसी अनिर्वचनीय तत्त्वका प्रतिपादन कर, निश्चय करे—उसपर मुझे कुछ नहीं कहना है; प्रेमीजन मधुर-रस-सिन्धुमें पूरी तरह गोते लगावें, थाह लें—उनसे भी मुझे कुछ कहना नहीं है; हम दूसरे धन्य-धन्य लोगोंकी ओर बिना देखे, अपने हृदयमें कपिराज श्रीहनुमानजीका ध्यान कर रहे हैं, प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी और निर्मल ।
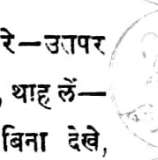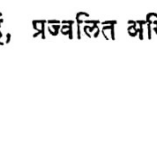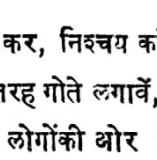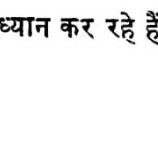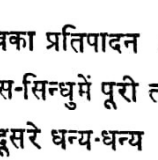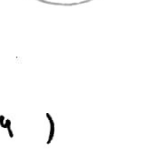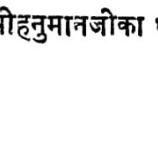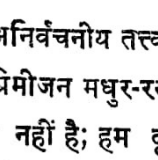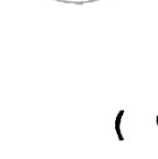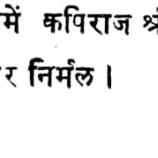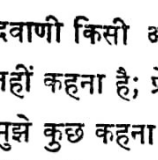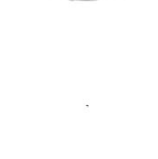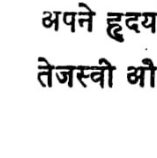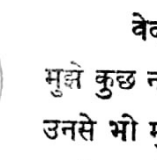
(६)

यदुत्सङ्गे रङ्गे नवनवतरङ्गाननुभव-
न्ननङ्गादीन् साङ्गानजयमजितः सङ्गजनितान् ।
अनायासं रिङ्गन् शिशुरिव स वात्सल्यजलधि-
र्दयोत्तुङ्गापाङ्गच्छविरवतु मां वायुतनयः ॥

(६)

एक छोटे बालककी तरह जिनकी गोदमें मैं नवीन-नवीन प्रेम-तरङ्गोंका अनुभव करते हुए खेलता और जिनकी कृपासे सङ्ग-जनित कामादि दोष मुझे जीत नहीं सके—मैंने अनायास उनपर विजय प्राप्त कर ली—वे वात्सल्य-वारिनिधि मारुत-नन्दन, जिनके नेत्रोंमें दयाकी उत्तुङ्ग छवि झलक रही है, सर्वदा मेरी रक्षा करें !

(७)

मोक्षं धर्मार्थकामान् निरतिशयसुखश्चैहिकामुष्मिकार्थान्
देवास्त्वत्पादसेवा अपि सरसहृदः प्रायशः प्रार्थयन्ते ।
मोक्षस्त्वात्माऽपरोक्षः सहजनिजतनुर्दातृदेयादिदूरः
संन्यस्तास्ते त्रयोऽथाप्यहह मम मनो मारुतेऽन्वेषते त्वाम् ।।

(७)

परम प्रेम-पूर्ण हृदय होकर तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेवाले देवगण भी प्राय: मोक्ष, धर्म, अर्थ, काम, लौकिक-पारलौकिक पदार्थ और निरतिशय सुखकी प्रार्थना किया करते हैं, परन्तु, मोक्ष तो मेरा अपरोक्ष आत्मा है, उसमें देने-लेनेका कोई सम्बन्ध नहीं है और धर्म, अर्थ कामका मैंने संन्यास कर दिया है—छोड़ दिया है। ऐसा होनेपर भी हाय-हाय, मेरा मन, हे मारुति ! हे हनुमानजी ! तुम्हें पानेके लिए व्याकुल है, ढूंढ़ रहा है ।

(८)

दक्षे विद्यां गदाख्यामितरकरतले जाड्यशैलं विशालम्
बिभ्रद् रागं समाङ्गे नयनयुगतटे द्वेषवैकट्यमिष्टम् ।
स्कन्धे त्रैगुण्यसूत्रं हृदि निहितहरिर्वस्त्रयुग्मावृतोऽसौ
विश्वाधिष्ठानभूतां तनुमवगमयन् मारुतिर्ब्रह्म सत्यम् ।।

(८)

दाहिने हाथमें विद्या-रूप गदा धारण किये हुए हैं, (संस्कृत-भाषामें 'गदा'का अर्थ 'व्यक्तवाणी' होता है), बायें हाथमें विविध रूपमें भासनेवाला जड़ताका पर्वत है, अङ्ग प्रत्यङ्गमें रक्त-रङ्गका राग है, भौहोंमें द्वेषकी विकटता है, टेढ़ापन है; कन्धेपर त्रिगुण-रूप सूत्र है, हृदयमें भगवान् राम हैं और दो प्रकारको माया अविद्याका वस्त्र धारण किये हुए हैं—अपने शरीरको विश्वाधिष्ठानके रूपमें प्रकट करते हुए सचमुच हनुमानजी ब्रह्म ही हैं ।

(९)

प्राणः सङ्गत्य मत्या गतिरतिरहितोऽस्पन्दतां सम्प्रयाति
वायुं चाश्लिष्य गाढं परिहृतविषया नाज्यते साञ्जनापि ।
इत्थं संयोगयोगे परशिवकृपया शुद्धबोधो हनूमान्
आविर्भूतोऽग्निवर्णो विषयविषयिताभ्रान्तिभूतं हिनस्ति ॥

(९)

प्राण मतिसे एक होकर गति-रति-रहित अवस्थाको प्राप्त हो, निष्पन्द हो जाता है। अञ्जना = (बुद्धि) भी वायु-प्राणका गाढ़ आश्लेष करके अभिव्यक्ति- शून्य हो जाती है। इस प्रकारके संयोग-योगमें परम-शिवकी कृपासे शुद्ध-बोध-रूप हनुमानजी प्रकट होते हैं। क्या ही आश्चर्य है कि यह शुद्ध-बोध-रूप हनुमान अग्निके समान प्रज्वलित होकर भ्रान्ति-जन्य प्रपञ्चका दाह कर देते हैं।

(१०)

प्राचीं चुम्बन्तमारात् फलमिव मधुरं सूर्यविम्बं ग्रहीतुं
बाल्याढुड्डीय गन्तुं गगनमतिजवादञ्जनोत्सङ्गलोलः ।
मा मा मेत्यालपन्त्या रुतिमनवदधद्गृह्यमाणोऽपि पुच्छे
पायादस्मानपायादभिहितिसुभगो मारुतिः सम्प्रहृष्यन् ॥
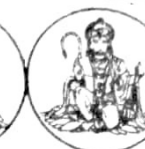
(१०)

प्राची दिशाका चुम्बन करते हुए सूर्य-विम्बको मधुर फल समझकर—पानेके लिए बाल्यावस्थाके कारण अञ्जनाकी गोदमें चञ्चल हो उठे। माता अञ्जना कहने लगी—'मा मा' (नहीं, नहीं), परन्तु, उनकी यह रुचि अर्थात् शब्दपर ध्यान न देकर जब उड़े, तब माँने पूंछ पकड़ ली। ऐसे सुप्रसन्न हनुमानजी, जिनका इसी कारण मारुति नाम पड़ गया—हमारी सब प्रकारकी हानिसे रक्षा करें !

(११)

भूयोभूयः प्रमाया श्रुतिरपि सततं मारुतिं ब्रह्म वक्ति
किं वा मौनोपदेशादवचनवचनं मारुतिः शास्ति शिष्यान् ।
मा मा मेत्याश्रुवन्वा जगदखिलमिदं संन्यषेधीत्स नेति
माऽस्मिन् शब्दप्रवृत्ती श्रुतिरिति कलये मारुतिं स्वात्मरूपम् ।।

(११)

भूयोभूयः प्रमाया श्रुतिरपि सततं मारुतिं ब्रह्म वक्ति
किं वा मौनोपदेशादवचनवचनं मारुतिः शास्ति शिष्यान् ।
मा मा मेत्याश्रुवन्वा जगदखिलमिदं संन्यषेधीत्स नेति
माऽस्मिन् शब्दप्रवृत्ती श्रुतिरिति कलये मारुतिं स्वात्मरूपम् ।।

(११)

'मा' अर्थात् यथार्थ अनुभव; 'रुति' अर्थात् शब्द—'मारुति' शब्द बारम्बार यह कहता है कि मारुति ब्रह्म हैं अथवा स्वयं मारुति अर्थात् शब्द-रहित श्रीहनुमानजी अपने शिष्योंको यह उपदेश करते हैं कि ब्रह्म शब्दोंके द्वारा निर्वचनीय नहीं है अथवा बारम्बार 'मा मा मा' अर्थात् 'ना ना ना' बोलकर कहते हैं कि निखिल प्रपञ्च है ही नहीं। अथवा वे मारुति शब्दसे कहते हैं कि इस आत्मा ब्रह्मके स्वरूपमें जाति, गुण, क्रिया, सम्बन्ध आदिके द्वारा शब्दकी प्रवृत्ति होती ही नहीं है—'मा' अर्थात् नहीं, 'रुति' अर्थात् शब्दकी प्रवृत्ति। ऐसे मारुतिको मैं आत्म-रूपसे अनुभव करता हूँ।

(१२)

भोजं भोजञ्च केशर्युपहृतनवनीतादिकं कामधेनोः
कण्ठे कृत्वाथ चिन्तामणिमतिसुभगं शम्भुना दत्तमीषत्।
बाल्यादावाथ कल्पद्रुममधुरफलं वायुनानीतमुद्यन्
क्षिप्त्वा भित्त्वा च हित्वा चणकमवनिगं वानरोऽश्नन् पुनातु॥

(१२)

हनुमानजीके पिता केशरीने कामधेनुका नवनीत लाकर दिया और हनुमानजी खाने लगे; शङ्करजीने चिन्तामणि लाकर धारण करायी—उसको थोड़ी देरतक गलेमें धारण कर लिया; वायुने कल्पवृक्षका मधुर फल लाकर खानेको दिया। परन्तु, बाल्यावस्थाके कारण नवनीत फेंक दिया, चिन्तामणि तोड़ दी, फलको फेंक दिया और धरतीमें बिखरे हुए चनेको चुन-चुन कर खाने लगे। ऐसे हनुमानजी हमें अपना कृपा-पात्र बनावें !

(१३)

तिलकललितभालं सङ्कुचत्केशजालं

स्मितलवलसिताभ्यां लोचनाभ्यां रसालम्।

कृतकलमलमश्वन्मालमालम्ब्य तालं

कलय कलय लौल्यादञ्जनोत्सङ्गलालम् ॥

(१३)

ललाटपर ललित तिलक शोभायमान है, घुंघराले बाल हैं, दोनों नेत्रोंमें मन्द-मन्द मुस्कान है, रसकी वर्षा कर रहे हैं, गलेमें माला सुन्दर लग रही है, ताल-स्वरके साथ भगवन्नामकी ध्वनि कलख कर रहे हैं—इस प्रकार, अञ्जनाकी गोदके लाल श्रीहनुमानजीका दर्शन करो—बड़े चावसे !

(१४)

मधुरमधरं चञ्चद्रागां सुधामिव सन्दधत्
हसितलसितं माद्यन्माद्यद्विकासि दृगञ्चलम् ।
मृदु मृदु मुदा शान्तं कान्तं मधूदितमञ्चितं
मदयति मनोहारं हारं समं मम मारुतेः ॥

(१४)

जिनके अधर बड़े मधुर हैं, मानो छलकते हुए रागसे युक्त अमृतको ही धारण किये हुए हैं, मुखपर हास्य स्पष्ट है, जो मदसे झूम रहे हैं, जिनकी आँखोंकी पलकें खुली हुई हैं और मृदु-मृदु आनन्दसे भरी हुई मधुमय वाणी शान्त-कान्त, प्यारी-प्यारी लग रही हैं, ऐसे श्रीहनुमानजीका सब कुछ मेरे मनको बारम्बार हरण करके मदमत्त बना रहा है !

(१५)

प्रज्ञाप्राणावुपाधी प्रणिहितमतयो भावयन्तीश्वरस्य,
तावेतौ भाव्यमानौ हनुमति विषयेऽनन्यनिष्ठौ विभातः ।
तस्मादस्येश्वरत्वं श्रुतिशतविहितं ब्रह्मता चार्थसिद्धा
स्वात्मा ब्रह्मेति वाक्यादनुभवतु भवान्स्वं हनूमन्तमन्तः ॥

(१५)

एकाग्र एवं सूक्ष्म बुद्धिवाले पुरुष ईश्वरकी दो उपाधि मानते हैं। एक—प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि और दूसरो—प्राण अर्थात् शक्ति। यदि इन दोनोंका चिन्तन करें, तो श्रीहनुमानजीमें ये अनन्य-निष्ठ सर्वथा जान पड़ते हैं। वे बुद्धि और बलके निधान हैं। अतः, कौषीतकी आदि उपनिषदोंके अनुसार श्रीहनुमानजीका ईश्वरत्व सिद्ध है और तात्पर्य वृत्तिसे ब्रह्मत्व। इसलिए, आप निःशङ्क होकर—'आत्मा ही ब्रह्म है'—इस वाक्यके अनुसार अपने अन्तर-हृदयमें, अपनेको हनुमान अनुभव कीजिये !

(१६)

'बाल्यन्निर्विद्य मौनं श्रुतिरियमपरा बोधशक्त्युत्थभावात्
सिद्धं विश्वप्रपञ्चोपशमवचनं मारुतिं स्तौति नूनम्।
बाल्याद् ब्रह्मात्मसिन्धौ विषयशयपृथङ्नाममूर्तीर्निरस्यन्
आसीद्यस्मान्महात्मा गुरुजनवचनाद्विस्मृतासत्प्रपञ्चः' ॥

'बाल्य अर्थात् ज्ञान - बल भावसे प्रपञ्चकी ओरसे उपशान्त होकर मौन हो जाना चाहिए'—ऐसा दूसरी श्रुति कहती है। 'प्रपञ्चसे उपशान्त हो जाना चाहिए', यह कहकर श्रुति निश्चय ही सिद्ध हनुमानजीकी स्तुति करती है। बाल्यावस्थासे ही विषय और उसकी उपशान्ति अथवा विषय-निष्ठ नाम-रूपका निरास करके, गुरुजनोंकी आज्ञासे असत् प्रपञ्चका परित्याग और मौन-प्रधान जीवन व्यतीत करनेके कारण हनुमानजी जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, ब्रह्मरूप महात्मा ही हैं।

प्राणो ब्रह्मेतिवाक्यं स्फुटयति नितरां मारुतेर्ब्रह्मभावम्,
वायो त्वं ब्रह्म साक्षादिति च सुतगताभेदमेव प्रशास्ति।
ब्रह्माण्डानां सहस्रं विघटयितुमलं कालकालाग्निरुद्रम्,
भद्रं वीरं महान्तं निजहृदि कलये तद् हनूमन्तमाद्यम्॥
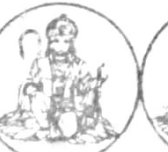
(१७)

श्रुति यह कहकर कि 'प्राण ही ब्रह्म है', मारुत-नन्दन हनुमानजीकी ब्रह्म-रूपताको पूर्ण रूपसे स्पष्ट करती है। 'हे वायु, तुम ब्रह्म हो'—यह कार्य-कारणके अभेदका वचन भी सुतगता भेद (पवन-पुत्र) प्राण-रूप हनुमानका वायुसे अभेद ही सिद्ध करता है। सहस्र-सहस्र ब्रह्माण्डोंको फोड़-फोड़ डालनेमें समर्थ काल-कालाग्नि, रुद्र, वीर, महान् जगत्के आदि कारण, परम-कल्याण-स्वरूप हनुमानका हम हृदयमें चिन्तन करते हैं।

(१८)

कामोऽग्रेऽवर्ततेति श्रुतिरपि जगतां मूलमाख्याति कामं
विश्वस्मिन् सोऽपि सिद्धः पवनतनयजो[10] बद्ध[11] एव स्वपित्रा।
यो नित्यब्रह्मचारी[12] स किमिह सुतवान् माययेत्युक्तयुक्त्या
मायासृष्ट्यादिहेतुः स्फुरतु हृदि सदा मारुतिः स्वात्मरूपः॥

(१८)

श्रुतिका कहना है कि सृष्टिके आरम्भमें 'काम' ही वर्तमान था। इससे सिद्ध होता है कि कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंका मूल 'काम' है। विश्वके व्यवहारमें काम भी प्राण-वायुका पुत्र है और 'स्वपित्रा' अपने पिता (प्राण-वायु)से आबद्ध होनेपर वह भी आबद्ध हो जाता है। प्रश्न उठा, जो नित्य ब्रह्मचारी है वह पुत्रवान् कैसे हुआ ? इसका उत्तर मिला—'मायासे।' इस उक्त-युक्तिसे माया-सृष्टिके आदि कारण श्रीमारुति अपने आत्माके रूपमें सदा हमारे हृदयमें स्फुरित होते रहें।

(१९)

सामञ्जस्यं न किञ्चित्समरसचरिते निर्विकारे कुमारे
ब्रह्माचारे स्थितीनां मतिकृतिततिभिः कल्पितानां गतीनाम् ।
मायाछायाव्यतीते न भवति सुतरां सुम्निरुम्निश्च यस्मात्
तस्माच्छास्त्रप्रसिद्धं परममृतमजं ब्रह्म यत्तद् हनूमान् ॥

(१९)

कोटि-कोटि मति-कृतिसे कल्पित, स्थितियों और गतियोंका निर्विकार, नित्य-कुमार श्रीहनुमानजीके साथ कोई सामञ्जस्य-सामरस्य नहीं है; क्योंकि वे समरस-चरित हैं और उनका आचरण ब्रह्मवत् है, माया-छायासे अत्यन्त अतीत मारुत-नन्दनमें सृष्टि और प्रलयकी कोई कल्पना नहीं हो सकती। इसलिए, शास्त्र-प्रसिद्ध जो परम सत्य, अज, अनन्त ब्रह्म-तत्त्व है—वही हनुमान हैं!

(२०)

पृथ्वी देहोऽन्नरूपः जलमुरुधिरवद् वह्निरौष्ण्यादिरूपः
वायुः प्राणोऽवकाशो गगनमपि महान् बुद्धिरूपेण दृष्टः।
ईशो जीवः सुषुप्तं प्रकृतिरपि परीणामवन्तश्च सर्वे
व्यष्टित्वं सम्भजन्ते विकृतिविरहितश्चिद्वपुः श्रीहनूमान्॥

संसारके सभी तत्त्व परिणामी और विकारी देखे जाते हैं—पृथिवी अन्नरूप हो जाती है, जल रक्त बन जाता है, अग्नि उष्ण हो जाती है, वायु प्राण-रूप हो जाता है, आकाश अवकाश हो जाता है, महत्तत्त्व बुद्धिरूप हो जाता है, ईश्वर जीव-रूप हो जाता है, प्रकृति परिणामिनी है। इस प्रकार सभी परिणामी हैं, सबमें विकार है। परन्तु, श्रीहनुमानजी प्रकृति-विकृति व व्यष्टि-समष्टिसे रहित शुद्ध चिद्वपु ही हैं।

यत्सच्चिद्ब्रह्म मायाशबलितमभवत् कारणं सर्वशक्ति
सर्वेशः सर्वजीवः प्रकृतिरपि गुणाः बुद्धिराद्यं च कार्यम् ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रः कृतिमतिविलसद्भेदभाक् चापि सर्वं
निर्मायं तद्विशुद्धं कपिवरवपुषानन्दरूपं चकास्ति ॥

(२१)

जो सच्चिदानन्द ब्रह्म माया-शबलित होकर सर्वज्ञ सर्वशक्ति जगत्का कारण हुआ, वही सर्वस्वामी, सर्वजीव और वही प्रकृति, तीन गुण और आद्य-कार्य महत्तत्त्व भी हुआ। वही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र हुआ और वही कर्म-बुद्धिके विलाससे, जितना भी भेद जान पड़ता है—सब हो गया। मायासे पूर्व जो सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है—वही कपिराज श्रीहनुमानजीके रूपसे प्रकाशवान् हो रहा है !

(२२)

ध्यायं ध्यायं हृदब्जे नवरसललितं जानकीप्राणनाथं
गायं गायं मुखाब्जे मृदु मृदु मधुरं सामवद्रामनाम।
पायं पायं च लीलामृतमतुलसुखं सम्मुखं यः सखीनां
स्मायं स्मायं हनूमान् वितरतु सततं प्रेमसम्पन्मधूनि ॥

(२२)

श्रीहनुमानजी अपने हृदय-कमलमें जानकी-प्राण-बल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं और अपने मुखकमलसे सामवेदकी तरह मधुर स्वरसे राम-नामका मृदु-मृदु गीत निरन्तर गाते रहते हैं और अपने सखा और सखियोंके सामने परमानन्दमय लीला-रसका निरन्तर पान करते रहते हैं। ऐसे मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए श्रीहनुमानजी प्रेम-सम्पदा-रूप मधुका वितरण करते रहें।

(२३)

क्षमाक्षमः स्नेहरसोऽग्निवर्णो

बलानिलो व्योमविशालवक्षाः।

मनोमयोऽर्केन्दुसमानदृष्टिः

स्फुटाष्टमूर्तिर्ध्रुवमाञ्जनेयः॥

(२३)

क्षमा—अर्थात् पृथिवीके समान क्षमा-शीलवाले, जलके समान स्नेह-रससे परिपूर्ण, अग्निके समान तेजस्वी रक्तवर्ण, वायुके समान बलवान, आकाशके समान विशाल वक्षःस्थलवाले मनोमय-मूर्त्ति, सूर्य-चन्द्रमाके समान दृष्टिवाले श्रीहनुमानजी स्पष्टरूपसे अष्टमूर्ति भगवान् शंकर ही हैं !

(२४)

सुग्रीवः शुद्धसख्याचरितमभिलषन् रामभद्रेण सार्द्धं,
सङ्कोचाद् गौरवोत्थाद् रघुपतिहृदयं नास्पृशद्भक्तिनम्रः ।
हस्ताभ्यां तौ गृहीत्वा स्मितललितमुखो गाढमालिङ्गयन् द्वा
आश्लिष्यन्नाञ्जनेयो जयति यतिपतिर्गोचरो नस्त्रिमूर्तिः ॥

(२४)

सुग्रीव शुद्ध सख्य-भावसे भगवान् रामके हृदयका स्पर्श चाहते थे, परन्तु, गौरव-जन्य सङ्कोच और भक्ति-भावपूर्ण नम्रताके कारण वे रघुपतिका हृदय स्पर्श नहीं कर सकते थे। हनुमानजीने मुस्कुराकर, ललित-ललित भावसे, दोनों हाथोंसे, दोनोंको पकड़कर, हृदयसे चिपका दिया और स्वयं भी चिपक गये। इस प्रकार यति-पति श्रीहनुमानजी त्रिमूर्ति हो गये। जय हो ! जय हो ! ऐसे हनुमानजी की !

(२५)

श्रुत्वाशोकवनीगतामवनिजामादाय गुर्वीं गदां,
हेमाभं महसोज्ज्वलं ज्वलितदृग्देहं महत्त्वं नयन्।
हुं हुं हुंकृतिझंकृतोतिरभसात्पद्भ्यां महीं कम्पयन्
क्षुभ्यन् प्राणइवाखिलस्य जगतोऽव्यात्प्राणजन्मा हरिः॥

(२५)

जब श्रीमारुत-नन्दन हनुमानजीके कानमें यह पड़ा कि अवनिजा श्रीसीताजी अशोकवनिकामें अवरुद्ध हैं तब वे अपने स्वर्ण-वर्ण अग्निके समान प्रज्वलित शरीरको महत्पूर्ण (बहुत बड़ा) बना लिया—हाथमें बड़ी गदा ले ली; उनकी आँखें आगके समान जलने लगीं। हुँ-हुँ-हुँ ऐसा हुंकार करके, पाँवसे धरतीको कम्पित करते हुए ऐसे क्षुब्ध हो गये, जैसे सारे जगत्‌का प्राण क्षुब्ध हो उठा हो; क्योंकि वायु-नन्दन श्रीहनुमानजी प्राणजन्मा तो हैं ही—ऐसे हनुमानजी हमारी रक्षा करें !
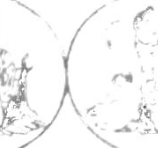
(२६)

उद्यत्कल्लोललोलं त्रिगुणमयमहावातसम्पातघातैः
मोहग्राहं स्वरूपानधिगमसलिलं दृश्यमानार्थसिन्धुम् ।
सन्तीर्य, स्पर्शशून्योध्यभिमतिमहतीं कर्मदेहाख्यलङ्कां
धुन्वन् वैराग्यबोधोपरमपरतनुर्मारुतिः संनिधत्ताम् ॥

(२६)

यह दृश्यमान जगत् एक समुद्रके समान है। इसमें, अपने स्वरूपका ज्ञान जल है और मोहका ग्राह निवास करता है और त्रिगुणमय महावातके सम्पातसे बड़ी-बड़ी तरङ्गें उठती रहती हैं। ऐसे उस समुद्रको, स्पर्श किये बिना लांघकर, अभिमानसे बनी हुई कर्म-देह-रूप लंकाको जिन्होंने जला डाला। वे वैराग्य-बोध और उपरामता-रूप श्रीहनुमानजी सर्वदा हमें अपने सान्निध्यका अनुभव करावें!

(२७)

आत्मानं ब्रह्म बुद्ध्वा नियतमतिग्रतिर्बृक्षमूलं श्रयेत,
यस्मादादेहदुर्गं निवसति नितरां शान्तिरत्रेति विद्वान्।
नूनं श्रुत्यैव सीतां दशमुखनगरे शिंशपामूलसंस्थां,
निश्चिन्वन्मारतिस्तामलभत विपिने रामतत्त्वात्मदर्शी॥

(२७)

निष्ठावान संन्यासी अपने आत्माको ब्रह्म जानकर वृक्ष-मूलमें वास करें; क्योंकि जबतक यह देहका दुर्ग रहता है, तबतक शान्ति संसार-वृक्षके मूलमें ही निवास करती है। अवश्य ही, श्रुतिके द्वारा ही यह जानकर कि दशमुखकी नगरीमें अशोक-वृक्षके नीचे ही सीताजी निवास करती हैं, श्रीमारुतिने वहाँ जाकर उनका दर्शन किया; क्योंकि वे राम-तत्त्वके परमार्थ-स्वरूपको जानते हैं।

(२८)

पुच्छं ब्रह्म प्रतिष्ठेत्यनुवचनपरा सा श्रुतिस्तैत्तिरीया,
किंस्वित् कश्चिद्विपश्चित् कलयति नितरां ब्रह्मपुच्छं कुतश्चित्।
दृष्टं दृष्टं हनूमाननुभवति बृहत्पुच्छसंस्थेन तेन
बोधाख्येनाग्निना यद्दशमुखवसतिं हेममायां ददाह ॥

तैत्तिरीय श्रुति कहती है कि 'ब्रह्म पुच्छरूप प्रतिष्ठा है।' क्या कोई विद्वान् कहीं पुच्छको ब्रह्म-रूपमें देखता है ? हाँ, हां ! हनुमानजी अपने पुच्छको ब्रह्मरूपमें देखते हैं। क्योंकि उसी पुच्छमें स्थित बोधाग्निके द्वारा उन्होंने दशमुख (इन्द्रियों)की बस्ती हेममाया लंकापुरीको भस्म कर दिया।

प्राणेशो राघवो मां स्मरति मम कथां वापि हंहो हनूमन्
सीतापृष्टः स ऊचे रघुपतिरनिशं त्वन्मयस्त्वामुपास्ते।
बाह्यान्तर्भावशून्यश्चिदमृतकरुणासागरो नागरोऽपि
पश्यन्नाराल्लतादौ निगमयति मुहुर्जागरेश्लिष्यति त्वाम् ॥

(२९)

श्रीसीताजीने प्रश्न किया कि 'हे हो हनुमान! क्या प्राणेश्वर रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र कभी मेरा स्मरण करते हैं, मेरी कथाका स्मरण करते है?' श्रीहनुमानजीने कहा—'श्रीरामचन्द्र तो तुम्हारे स्वरूप हो गये हैं और तुम्हारी ही उपासना करते हैं। उन्हें बाहर-भीतरका भी भेद ज्ञात नहीं रह गया है। चिदमृत करुणासागर नागर होनेपर भी लता-वृक्षादिमें तुम्हारा दर्शन करते हैं और जाग्रत्-अवस्थामें भी उन्हें तुम्हारा स्वरूप समझकर आलिङ्गन करते हैं।'

(३०)

लङ्कायां किं कलङ्कानपकृतवपुषा जानकी जीवतीति
पृष्टो रामेण वक्तुं प्रणयविनयवाङ्माधुरीं तामनीशः।
स्विद्यन्मुह्यन् प्रमाद्यन् मुखमवनमयन् रुद्धकण्ठो हनूमान्
लोलल्लाङ्गूललोमा मतिलवरहितः केवलं रोदितिस्म॥

(३०)

श्रीरामचन्द्रने हनुमानजीसे प्रश्न किया कि 'क्या जानकी लङ्कामें कलङ्क-रहित जीवन व्यतीत करती हुई जी रही है ?' उनके इस प्रश्नपर उन्हें पसीना हो गया, वे असावधान वेहोशसे हो गये; बुद्धि खो बैठे। उनका मुँख लटक गया व गला रुँध गया और उनको पूंछका एक-एक रोंगटा खड़ा हो गया। वे प्रणय-विनय वाङ्माधुरी बोलनेमें भी असमर्थ, केवल रोने लग गये।

(३१)

सीतावचनम्

सर्वेषामिन्द्रियाणां सृतिमुपसरता मार्ग एवावरुद्धः
प्राणानाश्लिष्यतान्तर्दृढतरनिगडेऽस्पन्दितास्तेऽपि नूनम् ।
आत्मान्विष्टोऽपि देहे न मिलति निपुणं राघवेणैक्यमाप्तो,
भूयो मृत्युर्निराशः सुखयितुमभवन्मारुते मामभीष्टः ॥

सीताजी कहती हैं—सम्पूर्ण इन्द्रियोंके मार्गमें आकर उन्होंने प्राणोंके जानेका मार्ग ही रोक दिया है, हृदयमें प्राणोंका गाढ़ आश्लेषण करके उन्हें कैद कर लिया है—हथकड़ी-बेड़ी पहना दी है। मैं चाहती हूँ कि मृत्यु हो जाये। परन्तु, आत्मा श्रीरामचन्द्रसे एक हो गया है, अतः मृत्यु बार-बार आकर ढूँढती तो है, परन्तु मुझे सुखी करनेमें निराश होकर लौट जाती है; क्योंकि, न इन्द्रियोंका मार्ग है, न प्राण खुले हैं और न तो आत्मा ही शरीरमें है, फिर, मेरे चाहनेपर भी मृत्यु कैसे हो ?,

श्रीसीतारामचन्द्रोदितमधुररसोद्गारिपीयूषसार-
सन्देशादानदानप्रभृतिकृतिकृती निर्जनारण्यवृत्तिः ।
स्मारं स्मारं तदन्तः स्थितपरमरसाद्वैतसंश्लेषभावम्
स्वात्मोत्सङ्गस्थदीव्यद्युगमिलनसुखं मारुतिः संव्यतानीत् ॥

(३२)

श्रीहनुमानजी जंगलमें अकेले रहते हैं। श्रीसीता-रामचन्द्रके कहे हुए मधुर, रसोद्गारी, पीयूषसार वचनका बारम्बार आदान-प्रदान करते हैं—श्रीसीताजी यह कह रही हैं, श्रीरामचन्द्र यह कह रहे हैं और पुनः-पुनः दोनोंके अन्तर्मिलनका स्मरण करते हुए उनके रसाद्वैत-भावमें मग्न हो जाते हैं और अपने हृदयमें इस अद्भुत सुखका मानो सीता-रामचन्द्र दोनों मिल रहे हैं—अनुभव करते रहते हैं और बढ़ाते रहते हैं।

(३३)

लङ्केशभ्रातरं यच्छरणमुपगतं शङ्कमानो व्यमृक्षत्
सुग्रीवस्तद् हनूमान् मतिगतिविकलोऽवाङ्मुखः पर्यतप्यत् ।
रामादेशं निशम्योच्छलदमलमना वक्षसाश्लिष्य गाढं
तत्पादाब्जं प्रणेष्यन् प्रणयपुलकितः साश्रु माद्यन्ननृत्यत् ॥
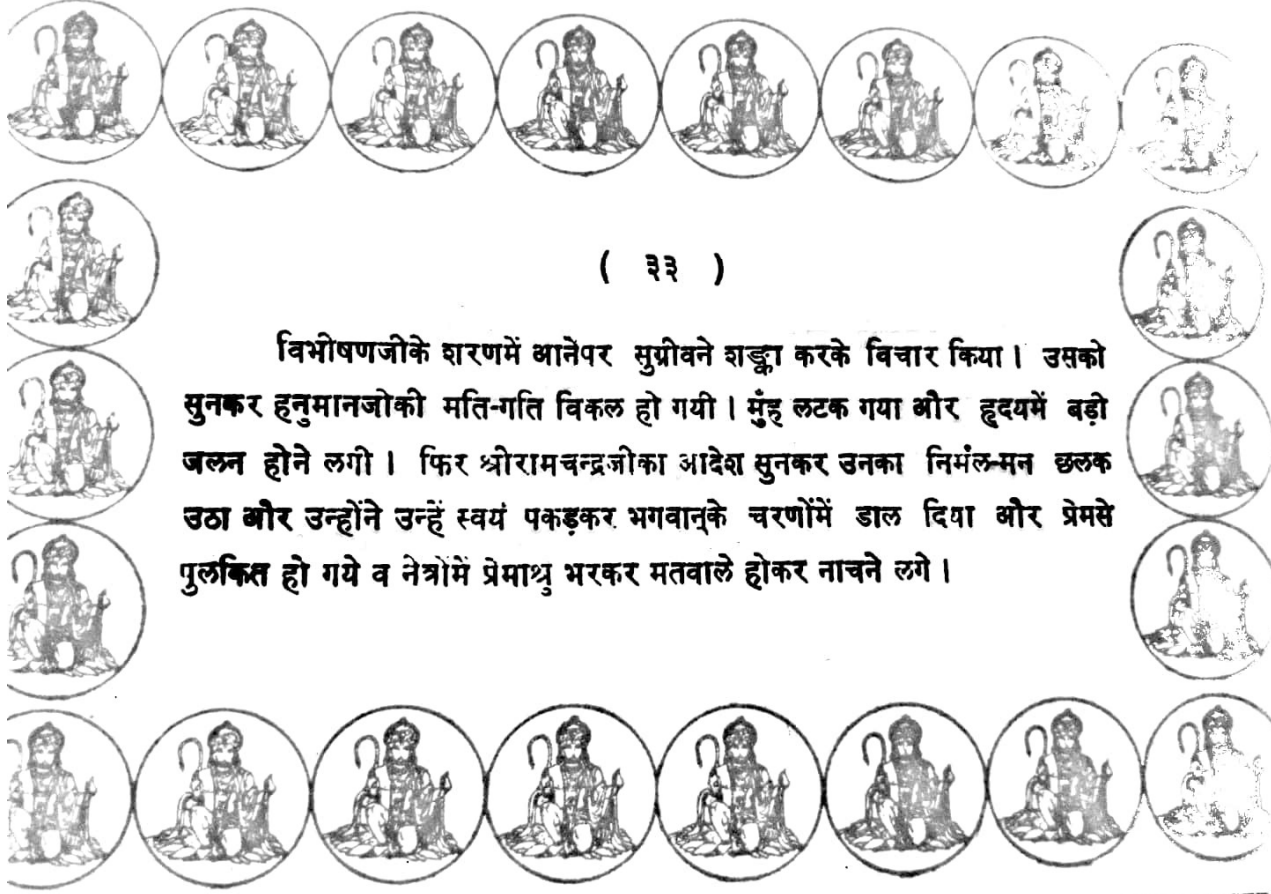
(३३)

विभीषणजीके शरणमें आनेपर सुग्रीवने शङ्का करके विचार किया। उसको सुनकर हनुमानजीकी मति-गति विकल हो गयी। मुंह लटक गया और हृदयमें बड़ी जलन होने लगी। फिर श्रीरामचन्द्रजीका आदेश सुनकर उनका निर्मल-मन छलक उठा और उन्होंने उन्हें स्वयं पकड़कर भगवान्के चरणोंमें डाल दिया और प्रेमसे पुलकित हो गये व नेत्रोंमें प्रेमाश्रु भरकर मतवाले होकर नाचने लगे।
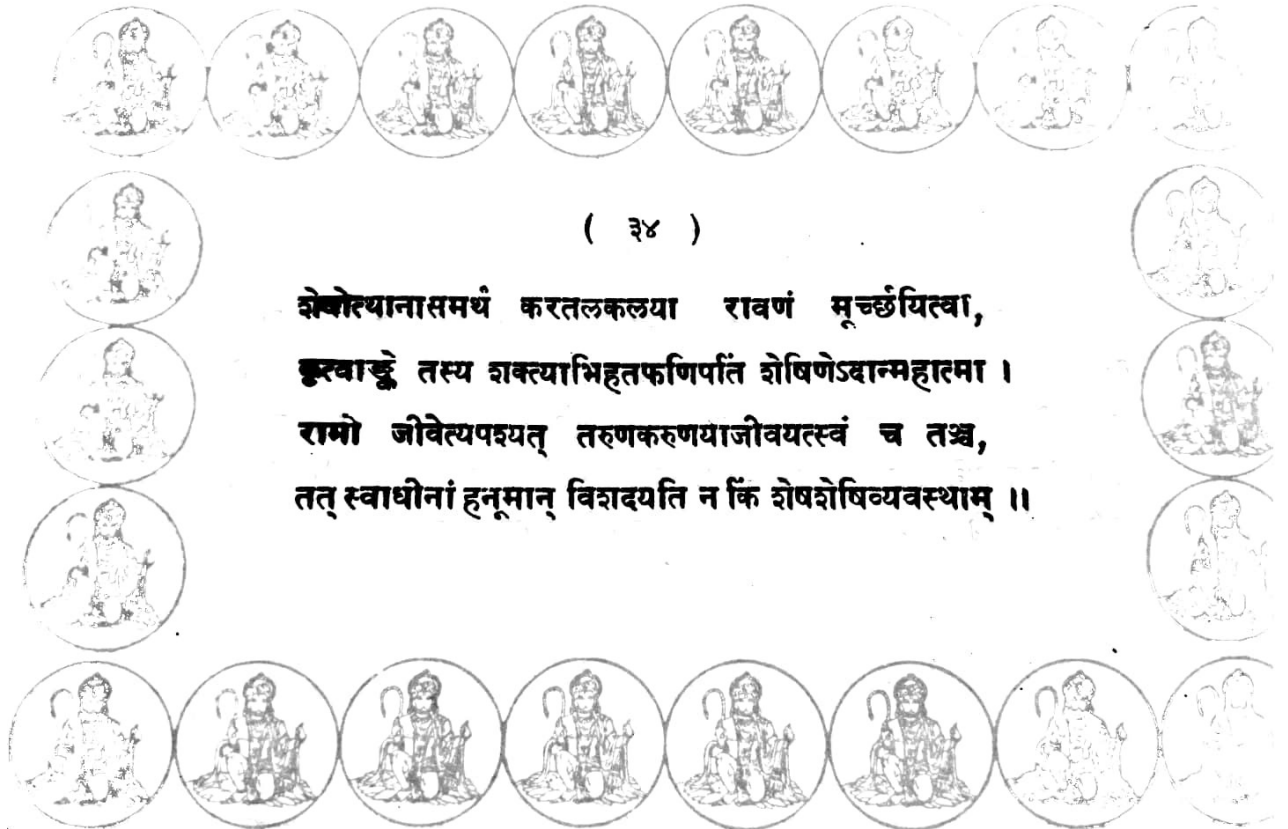
(३४)

शेषोत्थानासमर्थं करतलकलया रावणं मूर्च्छयित्वा,
कृत्वाङ्के तस्य शक्त्याभिहतफणिपतिं शेषिणेऽदान्महात्मा।
रामो जीवेत्यपश्यत् तरुणकरुणयाजीवयत्स्वं च तश्च,
तत् स्वाधीनां हनूमान् विशदयति न किं शेषशेषिव्यवस्थाम्॥

(३४)

शक्ति लगनेपर रावण लक्ष्मणजीको नहीं उठा सका। हनुमानजीने एक चाँटा मारकर रावणको बेहोश कर दिया और रावणकी शक्तिसे चोट खाये हुए लक्ष्मणको बड़ी आसानीसे उठाकर श्रीरामचन्द्रजीको समर्पित कर दिया। श्रीरामने कहा— 'लक्ष्मण, उठो' (और वे उठ बैठे)। इस प्रकार परम करुणा-मूर्ति हनुमानजीने शेषी और शेष, राम और लक्ष्मण—दोनोंके जीवनकी रक्षा की और यह प्रकट कर दिया कि दोनोंका जीवन उनके अधीन है।

(३५)

नन्दिग्रामोपकण्ठे प्रियतमविरहात् खिद्यमानान्तरङ्गं,
सौभाग्यं भक्तिभाजां भरतमुपगतः प्राञ्जलिः प्राह प्रह्वम्।
श्रीरामेत्याञ्जनेयस्तदवकलनजानन्दमग्नेन तेन,
तद्वक्षःस्थेन माल्यीकृतनिजवपुषा स्रग्धरोऽस्मान् बिभर्तु॥

(३५)

नन्दिग्रामके पास अपने प्रियतम श्रीरामचन्द्रके विरहसे भरतजीका हृदय अत्यन्त खिन्न हो रहा था। श्रीहनुमानजी भक्तिमानोंके परम सौभाग्य श्रीभरतजीके पास जाकर, हाथ जोड़कर बड़े विनयसे बोल पड़े—'श्रीराम', 'श्रीराम'। नाम श्रवण करते ही भरतजी आनन्द-मग्न हो गये और अपने दोनों हाथ हनुमानजीके कण्ठमें डालकर मालाकी तरह उनके हृदयपर लटक गये। ऐसे भरतजीकी माला पहने हुए—श्रीहनुमानजी हमारी रक्षा करें!

(३६)

हारं भिन्दन् सभायां जनकतनुजयोपाहृतं श्रीहनूमान्,
क्षिप्तो लोकैरवोचन्निजपरमधनं राघवोऽन्विष्यतेऽस्मिन्।
किं रामस्तेऽन्तरङ्गे निवसति ? न हिं किं, वक्ष उत्पाटच सद्यः
बाह्योऽङ्गत्पद्मरागोत्थधिहृदयमधान्नीलपुष्पोत्थशोभाम् ॥

(३६)

श्रीजानकीजीने बड़े प्रेमसे भरी सभामें हनुमानजीको हारका उपहार दिया। हनुमानजी हारके हीरेके एक-एक दानेको फोड़-फोड़कर देखने लगे। लोगोंने आक्षेप किया—'यह क्या कर रहे हो'? हनुमानजीने कहा—'मैं इसमें अपने परमधन रामचन्द्रको ढूंढ़ रहा हूँ। लोगोंने कहा—'क्या तुम्हारे हृदयमें रामचन्द्र हैं?' 'क्यों नहीं'--कहकर झट उन्होंने अपनी छाती चीर दी और बाहरसे पद्मरागके समान लाल-लाल रक्त दीखनेपर भी भीतर नीलकमलके समान भगवान् श्रीरामचन्द्रके दर्शन होने लगे।

(३७)

पृथिव्याः सौरभ्यं सलिलरसमादाय मधुरं
सुसौन्दर्यं वह्नेरनिलकलितस्पर्शसुभगम्।
इदन्तानैवेद्यं नभसि विहितं हृत्प्रणिहितं
हनूमानात्मस्थो नवनवरसोऽश्नातु सुचिरम्॥

(३७)

पृथिवीका सौरभ, जल-तत्त्वका मधुरस, तेजस् तत्त्वका सौन्दर्य, वायु-तत्त्वका सार-सार स्पर्श और आकाश-तत्त्वका इदंता-रूप नैवेद्य मैं चिरकाल तक श्रीहनुमानजीको समर्पित करता रहूँ और वे मेरे हृदयमें स्थित होकर चिरकालतक नवीन-नवीन रसका आस्वादन करते रहें, भोग लगाते रहें !

(३८)

विष्णुः शेषाङ्कशायी यदुकुलतिलकश्चापि शेषानुयायी
तस्मादर्वाक्प्रसिद्धौ प्रकृतिपरतमां ब्रह्मतां किं लभेताम् ।
शेषो रामानुयायी रघुकुलतिलकोत्सङ्गशायी च तस्य
ब्रह्मत्वं संव्यतानीदितिरसहसितान्मारुतिर्मामगादीत् ॥

(३८)

विष्णु शेषकी गोदमें शयन करते हैं और श्रीकृष्ण शेष-रूप बलरामजीके छोटे भाई हैं, इसलिए, शेष-तत्त्वके पीछे होनेके कारण प्रकृतिसे परे जो ब्रह्म-रूपता है, वह इन लोगोंको कैसे प्राप्त हो सकती है ? पर शेष-रूप लक्ष्मण रामजीके अनुयायी हैं और उनकी गोदमें शयन करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि राम शेषसे भी परे हैं। यह बात मौजमें, हँस-हँसकर श्रीहनुमानजीने मुझसे कही थी।

(३९)

विद्याविद्या असंख्या नवरसरसिताः का न कृष्णस्य कान्ताः
लक्ष्मीं नीलां भुवं च त्रिगुणरसमयीः सेवते शेषशायी।
सीतां विद्यामनन्यामुदवहदमलां राघवेन्द्रोप्यनन्यः
स्त्रीमायास्पर्शशून्यो मम मनसि सदा मारुतिर्ब्रह्म भाति॥

(३९)

श्रीकृष्णके तो नवरससे परिपूर्ण विद्या-अविद्या रूप अनेक प्रिय स्त्रियाँ हैं, शेषशायी विष्णु त्रिगुण रसमयी लक्ष्मी, नीला देवी और भूदेवीका सेवन करते हैं और श्रीरामचन्द्रने अनन्य निर्मल-विद्या-रूप श्रीजानकीजीसे विवाह किया और एक पत्नीव्रत रहे; परन्तु, मुझे तो स्त्री-मायासे सर्वथा रहित श्रीहनुमानजी अद्वैत-ब्रह्म ही भासते हैं।

(४०)

देहः पात्रं जीवनं स्नेहधारा
वर्तिः प्राणा ज्योतिरात्मैष जीवः ।
वाचो ध्वानं चापलं नृत्यमित्थं
स्वारार्तिक्यं मारुतेश्चिन्तयेऽहम् ॥
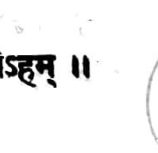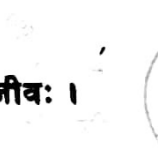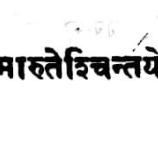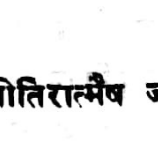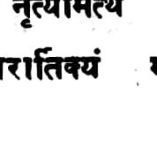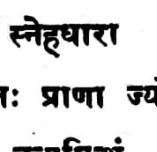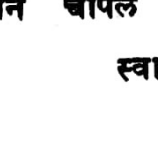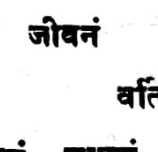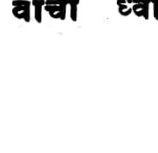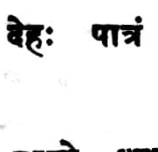
(४०)

देह पात्र है, जीवन स्नेह-धारा है, प्राण बत्ती हैं, जीव ज्योति-स्वरूप है, वाणी घंटा-ध्वनि है और चपलता नृत्य है—इस प्रकार मेरा समग्र जीवन ही हनुमानजीकी आरती है—मैं ऐसा चिन्तन करता हूँ।

(४१)

विस्फूर्जद्ब्रह्मचर्यस्फुरदलघुबलो लक्ष्मणोल्लाघहेतु—
र्गन्धोन्मादौषधस्याहृरणधिषणया कालनेमिं निहत्य।
संग्रामे पुष्कराख्यं निधनमुपगतं मारुतिः श्रीहनूमान्
मृत्योराच्छिद्य लोकेऽकृत निजमरणोन्मुक्ततां सत्स्फुटार्थाम्॥

(४१)

परिपूर्ण ब्रह्मचर्यके उल्लाससे अतुलित बलशाली हनुमानजी लक्ष्मणजीको आरोग्य प्रदान करनेके लिए कालनेमिको मारकर गन्धमादनकी औषधि लाये। संग्राममें पुष्करको मृत्यु मिली। लोकमें मृत्युको पराजित कर अपनेको कालाबाधित सिद्ध कर दिया।

(४२)

अन्योन्यं प्रीतिमन्तौ स्मितललितमिलल्लोचनाभ्यां पुरस्तात्
पश्यन्तौ संसदन्तर्निभृतमतिरसाद्बिम्बितां स्वामभिख्याम्।
सीतारामौ हनूमान्मधुररसकृती चामरं चालयन् तौ
दर्शं दर्शं प्रमोदात्पुलकचितवपुर्वर्षतिस्माश्रुधाराम्॥

(४२)

भरी सभामें चुपचाप श्रीसीता—रामजी परस्पर प्रीतिके कारण अपने प्रतिबिम्बमें मुस्कुराते हुए नेत्रोंसे एक दूसरेकी शोभा देख रहे थे। दोनों प्रेमसे भरे हुए थे और दोनोंके वदनपर लालित्य छलक रहा था। श्रीहनुमानजी, जो मधुर-रसके अत्यन्त ज्ञाता हैं—चँवर डुला रहे थे और देखते भी जा रहे थे और दोनोंका यह आनन्द देख-देखकर (स्वयं) आनन्दमें मग्न हो रहे थे। उनके शरीरमें रोमाञ्च (हो रहा था) और नेत्रोंसे प्रेमाश्रुकी धारा बह रही थी।

(४३)

व्यक्तिः स्थूलाथ सूक्ष्मा दृशिविषयतयाप्राकृती प्राकृती वा—
प्यन्तर्यामिण्यनन्ते तरतमतरला शिष्यतामेव'[३] धत्ते।
अश्रान्तं पारतन्त्र्यन्ननु वहति ततोऽदृष्टदृश्यो'[४] हनूमान्
बुद्धस्याबुद्धतत्त्वस्य च तनुसमतामूहितुं दासमूर्तिः॥

(४३)

कोई भी व्यक्ति चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म, प्राकृत हो या अप्राकृत दृक्-तत्त्वका विषय ही होता है, क्योंकि उसमें न्यूनाधिक्य होता है, वह अनन्त अन्तर्यामीमें शासनका विषय ही होता है। यद्यपि श्रीहनुमानजी द्रष्टा-दृश्यके भावसे मुक्त हैं, तथापि निरन्तर अपनेको परतन्त्र ही रखते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि शरीर चाहे ज्ञानीका हो चाहे अज्ञानीका—एक समान ही होता है और वह परतन्त्र ही होता है। इसीसे वे (हनुमानजी) हमेशा दास-रूपमें रहते हैं।❋

❋ देखें अन्तिम पृष्ठ

(४४)

देहाहङ्कारसारं भ्रमकृतमखिलं भेदमुद्धर्तुमाराद्
आत्मा दृश्यप्रपञ्चादितर इति मतिं शास्ति सर्वात्मदर्शी।
अद्वैताखण्डबोधं जगदजरमजं पूर्णमानन्दसान्द्रं
मन्ये विद्वान् हनूमान् प्रकटपशुवपुर्ब्रह्मताभाह[15] तस्य[16] ॥

(४४)

पशु-पक्षी-मनुष्य आदिके जितने भी भेद हैं, सब भ्रान्तिप्रद हैं और उनका सार केवल देहाहंकार ही है। सर्वात्म-दर्शी श्रीहनुमानजी यह स्पष्ट कर देते हैं कि आत्मा दृश्य-प्रपञ्चसे सर्वथा विलक्षण है। अर्थात् दृश्यगत–भेदसे भिन्न-भिन्न नहीं होता। यह जगत् अद्वैत, अखण्ड, बोध-स्वरूप, अजर, अज, पूर्णरूपसे घनीभूत आनन्द ही है। ऐसा जान पड़ता है कि नाम-रूप कोई भी हो, वह ब्रह्म ही है। पशु--रूपसे रहकर इस बातको जाननेवाले हनुमानजी इस जगत्को ब्रह्म-रूप ही बताते हैं।

(४५)

अस्वातन्त्र्यं तु दुःखं स्ववशमिह सुखं प्राह कश्चिन्मनीषी
आस्तां देहात्मनां तन्निजपरमनसां बन्धनोन्मूलनाय।
बुद्धानामित्थमिष्टं न भवति परतः पोषवद्देहभाजां
मन्ये तज्ज्ञो हनूमान् परवशवपुषा तत्त्वमेतज्जगाद ॥

(४५)

किसी-किसी विद्वान्‌ने कहा है कि परतन्त्रता दुःख है और स्वतन्त्रता सुख है और, जिनके मनमें अपने परायेका भेद बैठा हुआ है, उन देहाभिमानियोंके लिए यह बात सच्ची भी हो सकती है और बन्धनके उन्मूलनमें हेतु भी हो सकती है। ज्ञानियोंको यह बात अभीष्ट नहीं है, क्योंकि वे तो दूसरोंके द्वारा खिलाये-पिलाये-पहनाये शरीरको ही ग्रहण करते हैं। जान पड़ता है कि हनुमानजीने अपने शरीरको श्रीरामचन्द्रके परतन्त्र रखकर यही अभिप्राय प्रकट किया है।

(४६)

देहस्यापारतन्त्र्यं कथमनुमनुतां शेमुषीमान् विरक्तः
अन्नाम्भोवह्निवायुप्रभृतिपरवशस्याचितोऽन्योन्मुखस्य ।
आहारेहापिपासाव्यसनशतजरामृत्युरोगार्दितस्य
ब्रह्मज्ञः श्रीहनूमच्चरणमनुसरन्नष्टमोहो मनस्वी ॥

कोई भी बुद्धिमान् विरक्त पुरुष देहको स्वतन्त्र कैसे मान सकता है ? क्योंकि यह शरीर अन्न, जल, अग्नि, वायु आदि—पञ्चभूतोंके वशमें ही रहता है और अन्य वस्तुओंका मुँह देखते रहता है ! यह शरीर आहार, चेष्टा, पिपासा, सैकड़ों प्रकारके व्यसन, बुढ़ापा, मृत्यु और रोगसे रौंदा हुआ है। जो ब्रह्मज्ञ श्रीहनुमानजीके चरणोंका अनुसरण करता है, उस मनस्वीका मोह नष्ट हो जाता है और वह शरीरको स्वतन्त्र रखनेका प्रयास नहीं करता है।

यस्यान्तर्देशलेशे विहरति भगवान् सीतया रामभद्रः
सर्वज्ञः सर्वशास्ता समहृदयगतो मायया कारणात्मा।
सर्वाधिष्ठानभूतं चिदमृतममितं कारणातीतमन्त-
र्बाह्यान्तःपूर्वपश्चाद्रहितमहमहं भावये मारुतिं तम् ॥

(४७)

जिन हनुमानजीके अन्तर्देशके लेश-मात्र स्थानमें सर्वज्ञ, सर्वशास्ता, सर्वान्तर्यामी, मायासे कारणात्मक भगवान् श्रीसीता रामचन्द्र विहार करते हैं उन—सर्वाधिष्ठान, अमित, सच्चिदानन्दघन, कारणातीत, वाह्यान्तर भावसे रहित, पूर्व-पश्चात्-भूत-भविष्यसे रहित-मारुतिका मैं अहं-अहंके रूपमें चिन्तन करता हूँ।

(४८)

यत्किञ्चिन्नामरूपात्मकमिदमखिलं भासते वस्तु दृश्यं
तन्नानादेशकालाश्रितमपि च तयोर्भेदकं सिद्धिमूलम्।
अन्योन्यापाश्रयत्वान्न भवति सुतरां तत्त्रयी वास्तवार्था
तन्मूलं तत्प्रकाशस्तदुदयविलयस्तत्स्वरूपो हनूमान्॥

(४८)

जो यह नाना नाम-रूपात्मक अखिल दृश्य भासमान हो रहा है वह अनेक देश और अनेक कालके आश्रित होनेपर भी देश-कालको सिद्ध करता है। अर्थात् दृश्य-वस्तुके बिना देश-कालकी सिद्धि नहीं हो सकती और देश-कालके बिना वस्तुकी सिद्धि नहीं हो सकती। अन्योन्याश्रित होनेके कारण ये तीनों अर्थात् देश-काल-वस्तु वास्तविक परमार्थ नहीं हैं और इस त्रयीके मूलभूत अधिष्ठान प्रकाशक, उसके उदय-विलय और उसके वास्तविक स्वरूप श्रीहनुमानजी ही हैं।

(४९)

स्थूलं हित्वा पदार्थं गणकगणपतिः दिग्विभागोपपत्त्यै
नेशस्तस्मान्निरंशा दिगिति मतिगता निच्छताप्यभ्युपेयम्।
एकस्यां वा समस्यां दिशि न च लभते दृश्यभावः स्वभूमिं
तस्मादिक्छब्दलक्ष्यं बृहदितिभणितं ब्रह्म मूर्तं हनूमान्॥

(४९)

चाहे गणितज्ञोंका गणपति हो हो, स्थूल-पदार्थको छोड़कर माने, एक विन्दुकी स्थापना किये बिना पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे आदिका विभाग सिद्ध नहीं कर सकता। इसलिए, न चाहनेपर भी बुद्धिमान्को दिक्-तत्त्व निरंश स्वीकार करना पड़ेगा और एक दिशामें या सर्व-दिशामें दृश्य-वस्तु अपने लिए वास्तविक स्थान प्राप्त नहीं कर सकतो, इसलिए दिक् शब्दके लक्ष्यार्थ वृहत् अर्थात् ब्रह्म नामवाले मूर्तिमान् श्रीहनुमानजी ही हैं।

(५०)

योऽयं कालः प्रसिद्धः किमु निरवयवस्तद्विरुद्धोऽथवेत्थं
सम्यङ् मीमांस्यमानो व्यवसितमतिभिर्नैति काञ्चिद्विभक्तिम्।
कल्पान्तोऽसौ कलाद्यःपरिणतिकलनाकल्पितो भाति सांशः
तत्कार्येक्षाक्षणार्थक्षयविदितवपुर्मारुतिश्चाकसीति ॥

यह जो काल नामकी वस्तु प्रसिद्ध है यह निरवयव है या सावयव ? अर्थात् टुकड़े-टुकड़े है कि एक है। जब स्थितप्रज्ञ पुरुष इसपर विचार करता है तो कालमें किसी अवयवकी सिद्धि नहीं होती। अर्थात् बिना उपाधिके वह खण्ड-खण्ड मालूम नहीं पड़ता। कल्पसे लेकर कल्पान्त- पर्यन्त वस्तुओंके परिणामसे उसमें खण्ड-खण्डकी कल्पना होती है। इसलिए कालकी उत्पत्ति और नाशके साक्षीके रूपमें स्वयंप्रकाश अधिष्ठान-स्वरूप श्रीहनुमानजी ही सत्य-रूपमें देदीप्यमान रहते हैं।

निर्मर्यादो महान् सन्नणुरपि च भवन् किन्नु कश्चित् पदार्थः
प्रेक्षावद्भिः प्रयत्नान्नयनपथिकतां नीयते न्याययुक्त्या।
तन्मध्ये भासमानं भवमखिलमिमं भ्रान्तिभूतं विभाव्य
भावे भावे विभातं भयरहितपदं भावये वायुसूनुम्॥

(५१)

कोई पदार्थ चाहे अपरिमित बड़ा हो, चाहे अपरिमित छोटा परमाणु, क्या किसी प्रेक्षावान् विद्वान्के द्वारा प्रयत्न-पूर्वक न्याय-युक्तिसे अर्थात् प्रत्यक्ष अनुमानसे प्रत्यक्ष किया जा सकता है ? उस अपने अत्यन्ताभावके अधिष्ठानमें भासमान यह अखिल प्रपञ्च भ्रान्ति-मूलक मिथ्या है—ऐसा समझकर प्रत्यक भावमें अर्थात् प्रत्येक प्रत्ययमें सार-रूपसे प्रकाशमान अभयप्रद श्रीहनुमानजीका मैं चिन्तन करता हूँ।

(५२)

यावन्तो रूपभेदाः स्फुरणपथगता रेखयोल्लिख्यमानाः
सा बिन्दूत्थाथ बिन्दुः परिणतिवशतः स्पन्दतेऽसंख्यरूपैः ।
दृग्दृश्यत्वादिदूरे किमिति परिणतिः कल्पितोपासनार्थं-
त्वध्यारोपापवादावधिनिरवधिकं हं हनूमन्तमीडे ॥

स्फुरण-पथपर जितने रूप-भेद उल्लिखित होते हैं, वे रेखासे बनते हैं और रेखा विन्दुसे बनती है। बिन्दुमें परिणामकी कल्पना करनेसे उसमें असंख्य रूपका स्पन्दन होता है। तो, द्रष्टा और दृश्य-भावसे रहित उस वस्तुमें परिणति और स्पन्दन कहांसे आगया ? यह उपासनाके लिए कल्पित है। अध्यारोप और अपवादकी सीमापर निरवधिक जो हनुमानजीका स्वरूप है, उसका मैं चिन्तन कर रहा हूँ।

वाक्यादर्थप्रसिद्धः पदसमुदयतो वाक्यजातं पदानि---
वर्णास्ते च स्वरेभ्यः स्वरविततिरहो नादजन्या स चैकः ।
आघातोपाधिभिश्शोऽरुचलतपवनात् प्राप्य नाना विवर्तान्
धत्तेऽध्यारोपितार्थो ननु निखिलजगन्नाममूर्तिर्हनूमान् ॥

(५३)

अर्थ वाक्यसे प्रकट होता है, वाक्य पदसे बनते हैं, पद वर्णोंके समूहसे बनते हैं, वर्ण स्वरोंसे स्वरूप लाभ करते हैं, स्वर नाद-जन्य होते हैं और वह नाद एक ही है। आघातकी उपाधिसे भिन्न होकर वह अ क च ट त प य शके भेदसे नाना विवर्तको प्राप्त होते हैं और उन्हींमें अर्थका अध्यारोप होता है। इसलिए, किसी भी वाक्यके द्वारा जो अर्थ प्रकट होता है, वह सचमुच निखिल जगन्नाम-रूप हनुमानजीका ही स्वरूप है और मैं उसीका चिन्तन करता हूँ।

(५४)

योऽन्तःस्थो वागुपाधिः परिणमतिमुहुर्नामरूपेण सोऽयं
नेत्रश्रोत्रादिसङ्गो वहति विषयतां हस्तसङ्गात् क्रियात्वम्।
मायाभिज्योतिषां यद्यो विषयपदगतश्चाश्रयत्वं प्रयातः
तद्रूपश्चापि सत्यः समविषमतया भासतेऽसौ हनूमान्॥

(५४)

जो अन्तःस्थ रहकर वाक्‌की उपाधिसे पुनः-पुनः नाम-रूपके रूपमें परिणत होता रहता है, वही नेत्र-श्रोत्र आदिको उपाधिसे विषयका रूप ग्रहण कर लेता है और वही हस्तादिकी उपाधिसे क्रियाका रूप ग्रहण कर लेता है। इन्द्रियोंकी मायासे जो विषय-रूप हुआ है और जो आश्रय-रूप भी रह रहा है, वह आश्रम-विषय रूप दोनो ही सत्य है और दोनोंके रूपमें श्रीहनुमानजी प्रकाशित हो रहे हैं। सम-विषम भी उन्हींके रूप हैं।

(५५)

वर्गोऽसाविन्द्रियाणामनुभवति सदा स्वं सजातीयमर्थं
वैजात्यं गृह्यमाणं निपुणतरदृशापीक्ष्यते नात्र किञ्चित्।
यद्यत्पश्याम्यहं तच्चिदिति मम चितो दर्शनाच्चित्तशून्यात्
तच्चिच्चेत्यादिभेदोज्झितसहजतनुर्वायुसूनुः समात्मा ॥

यह इन्द्रियोंका वर्ग सदा सजातीय अर्थको ही ग्रहण करता है। जैसे, तेजस तत्त्वसे बना नेत्रेन्द्रिय तेजस् तत्त्वसे बने रूपको ही ग्रहण करता है। निपुण दृष्टिसे देखनेपर भी कहीं विजातीय अर्थ ग्रहण होता नहीं दीखता। जो-जो मैं देखता हूँ वह, मुझ चित्से देखा जानेके कारण चिद्-रूप ही है, चेत्यकी कोई सत्ता नहीं है। इस कारण मुझे चित् और चेत्य आदिके भेदसे रहित श्रीहनुमानजी ही सर्वात्मा भासते हैं।

कः सन्धिर्द्रष्टृदृश्योभयपदविदितस्यार्थभेदस्य कर्त्ता
दृश्यञ्चेद् भेद्यरूपं यदि च तदितरो द्रष्टृतास्यानुभूतेः।
तत्त्वस्याज्ञानमेतान् रचयति विविधान् द्रष्टृदृश्यादिभेदान्
ज्ञानादुत्सारितेऽस्मिन्ननुभवकपिराड् राजतेऽद्वैतरूपः॥

(५६)

द्रष्टा और दृश्य—इन दोनों पदोंके उच्चारणसे जो भेदकी प्रतीति होती है, उसमें वह कौन-सी सन्धि है जो दोनोंको अलग-अलग करती है ? यदि वह दृश्य है तो भेद्य है, यदि वह दृश्य नहीं है तो द्रष्टा ही है। तत्त्वका अज्ञान ही द्रष्टा-दृश्य आदि नाना भेदोंकी रचना करता है। तत्त्वज्ञानके द्वारा इस अज्ञातकी निवृत्ति हो जानेपर अनुभव-स्वरूप श्रीकपिराज हनुमानजी ही शेष रह जाते हैं।

(५७)

सिन्धुर्वा स्यान्नभो वा नयनविषयतां प्राप्य भातोऽन्यथैव
नीलत्वं गृह्यमाणं ग्रहणपथगता योग्यतां संव्यनक्ति।
वृत्त्या सन्दृश्यमानोऽन्यथयति सहजं यत्स्वरूपं हनूमान्
तत् सिद्धोनन्ततत्त्वाग्रहणसहकृतः कृत्रिमोऽयं प्रपञ्चः ॥

(५७)

समुद्र हो या आकाश, नेत्रोंका विषय होकर अन्यथा प्रतीत होता है, अर्थात् नीला न होनेपर भी नीला मालूम पड़ता है। तो यह जो नीलता दिखायी पड़ती है, यह हमारे नेत्रोंके दोषको प्रकट करती है। इसी प्रकार वृत्तिसे ग्रहण करनेपर हनुमानजी जो अपने स्वरूपको अन्यथा दिखाते हैं, उससे यह सिद्ध हो जाता है कि अनन्त तत्त्वका ग्रहण न कर सकनेके कारण यह प्रपञ्च वास्तविक नहीं, कृत्रिम रूपसे ही भासता है।

(५८)

कार्यत्वेऽनिश्चिते किं प्रतिफलति जगत्कारणं वस्तु किञ्चिद्
अज्ञात्वा कारणं वा जगति न च बुधः कार्यतां निश्चिनोति ।
अन्योन्याधीनबोधात्तदुभयरचनाऽवास्तवी कल्पनोत्था
तत्कल्पानल्पतल्पश्चिदमृतरसतन्मात्रमूर्तिर्हनूमान् ॥

(५८)

जबतक कार्य-रूप होनेका निश्चय न हो जाये तबतक किसी कारण वस्तुका निश्चय हो सकता है ? अर्थात् जबतक जगत्का कार्य होना निश्चित नहीं है, तबतक इसके कारणका निश्चय कैसे किया जा सकता है ? साथ ही, कोई भी विद्वान् जबतक कारणका निश्चय नहीं कर लेगा, तब-तक क्या जगत्के कार्य होनेका निश्चय कर सकता है ? अर्थात् सर्वथा निश्चय नहीं कर सकता। कार्य और कारणका ज्ञान अन्योन्याश्रित है, इसलिए, दोनोंकी रचना अवास्तविक और कल्पना-प्रसूत है। इन दोनों कल्पनाओंके आश्रय अनन्त, चिन्मात्र, रसमूर्ति श्रीहनुमानजी ही हैं।

(५९)

सद्वासत्कारणं स्यात्तदुभयमिलितं तद्व्यतीतं नु वस्तु
वन्ध्यापुत्रायितं तज्जनितमिति विदः कार्यतां प्रत्यषेधन्।
भूतं वाभूतमाहो नहि भवति जगत् तत्त्वतो मायया वा
तज्जातिस्पर्शशून्योऽनुगतिविगतिमज्जालकालो हनूमान्॥

(५९)

जगत्का कारण सत् नहीं हो सकता क्योंकि वह निर्विकार है। जगत्का कारण असत् भी नहीं हो सकता, क्योंकि असत्से किसीकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। सत्-असत् मिलकरके भी जगत्का कारण नहीं हो सकते, क्योंकि दोनोंका मिलना असम्भव है और दोनोंसे अतिरिक्त कोई भी वस्तु जगत्का कारण नहीं हो सकती। जगत्की उत्पत्ति बन्ध्या-पुत्रके समान है, इसलिए, विद्वानोंने इसमें जातका, उत्पत्तिका निषेधकर दिया। जगत् सिद्ध-पदार्थ और असिद्ध-पदार्थ भी नहीं हो सकता है, इसलिए इसकी उत्पत्ति मायासे भी नहीं हो सकती। जात-अजातसे विलक्षणऔर अन्वय-व्यतिरेकके झगड़ोंके काल हैं श्रीहनुमानजी।

(६०)

कस्माज्जाताथ कस्मिन् सृतिरुपरमते केन को वेति वेत्ति
कालारम्भान्तदम्भं[१७] मतिविषयतया किं प्रमाता मिमीते।
तत्सृष्ट्युत्पादनाशार्थकमनृतकथाजालमाराद्विसृज्य
दृङ्मात्रं स्वं प्रपञ्चाकृतिमवकलये मारुतिं निर्विशेषम्॥

(६०)

यह सृष्टि किससे, किसके द्वारा, किसमें हुई है और किसके द्वारा, किसमें, किस कारणसे उपरामताको प्राप्त होगी, यह कौन जानता है ? क्या प्रमाता कालके आरम्भ और अन्तकी मायाको जान सकता है ? अर्थात् किसीमें भी यह सामर्थ्य नहीं है कि वह सृष्टिके आरम्भ और अन्तके कालको जान सके या अधिकरण-कर्ताको ही जान सके। इसलिए, सृष्टिकी उत्पत्ति और नाशकी झूठी कथा, मिथ्या चर्चाको छोड़कर मैं अपने आपको निर्विशेष दृङ्मात्र आत्मरूपमें हनुमानजी ही अनुभव करता हूँ।

(६१)

आधेयोऽयं प्रपञ्चो ह्यवयवसहितः स्वस्य सिद्ध्यै निरंशां
सिद्धां स्वाधारसत्तां निगमयति ततश्चारिताथ्यं समेति।
तस्यामस्यां न लेशश्चिति समयदिशावस्तुजातस्य कश्चिद्
आनन्त्यादंशवंशाश्रितम्मति गतिकस्याञ्जनेयाख्यमूर्त्याम् ॥

(६१)

यह सावयव आधेय प्रपञ्च अपनी सिद्धिके लिए किसी निरवयव आधार सत्ताकी अपेक्षा रखता है और उस सत्ताको सिद्ध करनेके बाद इसकी प्रतीति चरितार्थ हो जाती है, माने, प्रतीति अपने अधिष्ठानको सिद्ध करके अपना प्रयोजन पूर्णकर देती हैं। इसलिए, इस अपरोक्ष चिद्-वस्तुमें देश, काल और वस्तुका किञ्चित् भी लेश नहीं है, क्योंकि आञ्जनेयकी मूर्ति अनन्त है, और उसमें अंश-वंशके लिए कोई स्थान नहीं है।

(६२)

कायः किं कर्मजन्मा ननु तनुजनितं कर्म वा नोभयं तत्,
पौर्वापर्याप्रसिद्धेर्युगपदिति तदा हेतुकार्यत्वहानिः ।
सादित्वेऽस्वीकृते सा जनितजनकतारोपिताज्ञानमूला,
पारम्पर्यं च तद्वत् तदुभयविधुरो मारुतिः सिद्ध आत्मा ॥

(६२)

शरीर कर्मसे पैदा होता है या कर्म शरीरसे पैदा होता है—यह दोनों ही बात युक्तियुक्त नहीं है। क्योंकि बिना शरीरके पहले कर्म कहाँसे आया और बिना कर्मके शरीर कहाँसे आया ? इनमें पूर्वापर अर्थात् पहले-पीछेका भाव सिद्ध नहीं होता। यदि, दोनों एक साथ-ही होते हैं तो कारण-कार्य-भाव नहीं बन सकता, दोनों समानान्तर रेखाके समान पृथक्-पृथक् होंगे ! यदि दोनोंको सादि स्वीकार नहीं करेंगे तो कार्य-कारण-भाव सिद्ध नहीं होगा। असलमें यह कार्य-कारण-भाव अज्ञान-मूलक आरोपमात्र है। यदि बीज-वृक्ष परम्पराके समान अनादि मानें तो, यह अनादि परम्परा भी किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होती। इसलिए, कार्य-कारण-भावसे रहित श्रीहनुमानजी स्वयं-सिद्ध, स्वप्रकाश आत्मा ही हैं !

(६३)

शान्तो ब्रह्मात्मकत्वाद् रघुपतिपदयोर्दास्यवान् भक्तसख्यः,
भृङ्गारी युग्मरागारुणविमलवपुर्वत्सली निर्व्यलीकम्।
भावानां सामरस्यात्तनुमनुभवतां संज्ञया पञ्चवक्त्रो,
मध्ये चित्तं स नित्यं मधुमुदित इवोच्छृङ्खलं खेलताम्रः ॥

(६३)

श्रीहनुमानजी ब्रह्म-रूपसे शान्त-रस हैं, श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके भक्त होनेसे दास्य-रस हैं, भक्तोंके साथ सख्य-रस हैं, सम्पूर्ण दीन-जनोंके लिए निष्कपट वत्सल-रस हैं और श्रीसीता-रामचन्द्र-युगलके प्रति प्रीति होनेके कारण शृङ्गार-रस हैं—इसी शृङ्गार-रसको प्रकट करनेके कारण उनका शरीर अनुराग रंजित है और पाँचों रसकी मूर्ति होनेके कारण वे पञ्चमुख हैं। एक ही शरीरमें पाँचों भावोंका अनुभव करनेके कारण भक्त लोग उन्हें पञ्चमुख देखते हैं। ऐसे हनुमानजी मधुमत्तके समान हमारे हृदयमें निरन्तर उच्छृंखल खेलते रहें !

(६४)

रघुपतिसेवाः सकला
भरतादिभिराहृताः प्रेक्ष्य ।
जृम्भां प्रतीक्षमाणः छोटयितुं
वानरो जीयात् ॥

(६४)

एक बार भरत आदि सभीने यह देखकर कि रामचन्द्रजीकी सारी सेवा हनुमानजी अकेले ही कर लेते हैं, उनकी सेवाका परस्पर ऐसा बँटवारा कर लिया कि हनुमानजीको सेवाका अवसर ही न मिले। तब, हनुमान्‌जीने, महाराजाओंको जम्हाई आनेपर चुटकी बजानेकी सेवा, जो छूट गयी थी, अपने जिम्मे ले ली और दिन-रात प्रभुके सामने खड़े रहकर उनका मुखारविन्द निहारते रहते कि कब प्रभुको जम्हाई आये और मैं चुटकी बजाऊँ। ऐसा देखकर हनुमानजीको फिरसे प्रभुकी सारी सेवा मिल गयी। जय हो! जय हो!

(६५)

आनेतुं पानीयं सीतार्थं
राघवं च बीजयितुम्।
वर्द्धितबाहुर्युगपत्
प्रसादयंस्तौ हरिर्जयति ॥

(६५)

एक बार श्रीसीता-रामचन्द्र झूलेपर झूल रहे थे। श्रीसीताजीने आज्ञा की—हनुमान, जल ले आओ; श्रीरामचन्द्रने आज्ञा की—हनुमान, पंखा करो। दोनोंमें-से किसकी आज्ञा मानें ? हनुमानजीने अपनी (एक) बाहु लम्बी करके जल ला दिया (दूसरी बाहुसे) पंखा करते रहे। दोनों प्रसन्न हो गये। इस प्रकार दोनोंकी आज्ञा पालन करनेवाले श्रीहनुमानजीकी जय हो ! जय हो !

(६६)

धृतसिन्दूरो गच्छेदन्तःपुर-
मिति निशम्य रामवचः।
सिन्दूरारक्तशरीरो गन्तुं
कृतधीः कपिः स्फुरतु ॥

(६६)

श्रीहनुमानजी अन्तःपुरमें श्रीरामजीके सम्मुख जाकर चुटकी बजानेकी सेवा करना चाहते थे। श्रीरामजीने कहा कि जो सिन्दूर धारण करता है वही अन्तःपुरमें प्रवेश कर सकता है। श्रीहनुमानजीने (यह सुनकर अपना) सारा शरीर ही सिन्दूरसे रंग लिया। जय हो! जय हो! सखीके रूपमें अन्तःपुरमें प्रवेश करनेवाले श्रीहनुमानजी की जय हो। श्रीहनुमानजी हमारे हृदयमें स्फुरित हों।

(६७)

दृप्यन्त विष्णुवाहुं लघुकरलतो वेगतश्चापि धुन्वन्,
रुन्धन्तश्चक्रपिण्डं मुखसुखबिवरे न्यस्य कृष्णाख्यरामम्।
रज्यन् दृष्ट्वाथ सत्यां जनकतनुजनुःस्थानसंस्थां हनूमान्,
केत्यापृच्छन् सहास्यं हरिमवकलयन् सस्मितोऽस्मान् धिनोतु॥

एक बार गरुड़जीको यह अभिमान हो गया कि मेरे जैसा वेग और किसीमें नहीं है; चक्रको अभिमान हो गया कि मुझ जैसा तेजस्वी और कोई नहीं है और सत्यभामाको अभिमान हो गया कि मेरी जैसी सुन्दरी और कोई नहीं है। (तीनोंका अभिमान एक साथ दूर करनेके लिए) भगवान् श्रीकृष्णने गरुड़जीको हनुमानजीके पास भेजा और कहा कि उन्हें जल्दी बुलाकर ले आओ। हनुमानजीने कहा—'तुम चलो, मैं आजाता हूँ। गरुड़ने हनुमान्‌जीसे कहा—'मैं तुम्हें जल्दी पहुँचा दूँगा।' इसपर हनुमानजीने उन्हें पकड़कर समुद्रमें फेंक दिया और स्वयं उनसे भी वेगवान गतिसे द्वारका पहुँच गये। वहाँ द्वारकापुरीकी रक्षामें संलग्न चक्रने उन्हें रोका, तब हनुमान्‌जीने उसे पकड़कर बड़े आरामसे अपने मुखमें रख लिया और अन्दर पहुँचकर राम-रूपसे बैठे हुए श्रीकृष्णसे तो बहुत प्रेम किया, परन्तु, जानकीजीके स्थानमें बैठी हुई सत्यभामाके बारेमें पूछा कि यह कौन हैं? यह सुनकर श्रीकृष्ण भगवान् हँसने लगे और हनुमानजी भी मुस्कुरा पड़े। ऐसे मुस्कुराते हुए हनुमानजी हमारी रक्षा करें।
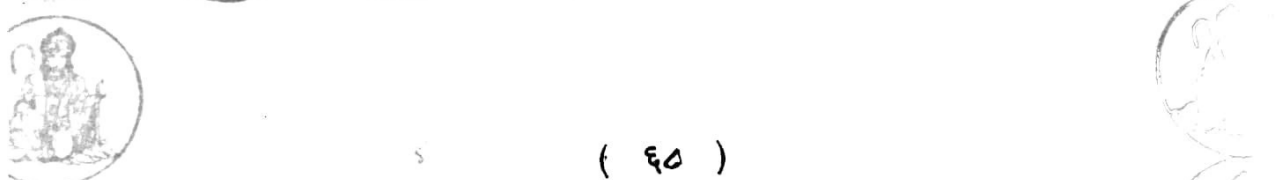
महीयन्तां ब्रह्मण्यवहितधियः स्वे महिमनि,
प्रमोदन्तां पुण्यैर्विहितमतयो नन्दनवने।
वयं शून्यारण्ये कटुविरटिते मर्कटभटै-
रटन्तोऽटन्तस्तं विकटहनुमन्तं चिनुमहे॥

(६८)

ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष सावधान बुद्धिसे अपनी महिमामें स्थित ब्रह्ममें रमण किया करें; विहित कर्म करनेवाले पुण्यवान पुरुष स्वर्गके नन्दन-वनमें आनन्द लेते रहें—हमें तो बस इतना ही चाहिए कि हम शून्य अरण्यमें, जहाँ वानर-भट विकट ध्वनिसे कटकटा रहे हों, वहाँ भटकते हुए और हनुमानजीका नाम रटते हुए, उन्हींको ढूँढते रहें।

(६९)

समागत्य विद्या परोपाहितं'ऽ सा

प्यनुल्बं परं तत्त्वमाविष्करोतु ।

वयं वायुजायाममायाममायं,

हनूमज्जनोमञ्जनामञ्जयामः ॥

(६९)

विद्यादेवी माया-उपाधिसे अवच्छिन्न ब्रह्मसे संयोग करके परम तत्वका अविष्कार करें, ठीक है, हम तो मायारहित वायु-पत्नी हनुमज्जननी अञ्जनादेवीको निष्कपट भावसे अपने हृदयमें धारण करते हैं।

(७०)

स्मारं स्मारं रघुपतिपदं सम्पदं भक्तिभाजां,
हारं हारं हृदयममदं सज्जनानां स्मितेन ।
कारं कारं तरुणकरुणां शं विधातुं शरण्यो,
धारं धारं मृदु मृदु पदं मारुतिर्मां प्रयाति ॥

(७०)

भक्ति-सम्पन्न पुरुषोंके सम्पत्ति-सर्वस्व श्रीरामचन्द्रके चरण-कमलोंका स्मरण करते हुए, अपनी मन्द-मन्द मुस्कानसे सज्जनोंके निरभिमान हृदयका हरण करते हुए, शरणागतवत्सल, सबका कल्याण करनेके लिए उच्चकोटिकी करुणाका विस्तार करते हुए, देखिये-देखिये, धीरे-धीरे चरण-कमलका बिन्यास करते हुए श्रीमारुतनन्दन मेरी ओर आ रहे हैं।

(७१)

सिन्दूराद्रिनिभेन दिव्यवपुषा नृत्यन्तमत्यद्भुतं,
गायन्तं करतालतालललितं रामेति रोमाञ्चितम्।
प्रेमार्द्रेण हृदाश्रयेऽश्रुविततीर्वर्षन्तमञ्चत्स्मितम्,
स्वानन्दोन्मदलोचनं धृतलसद्रक्ताम्बरं मारुतिम्॥

(७१)

सिन्दूर-पर्वतके समान दिव्य वपुसे अत्यन्त अद्भुत नृत्य कर रहे हैं, ललित करताल बजाकर श्रीराम-रामका गान करते जा रहे हैं। शरीरमें रोमाञ्च हो रहा है। प्रेमाश्रुकी धारा बह रही है। मुखपर आनन्दकी छटा छलक रही है। सानन्द, उन्मद नेत्र हैं और बहुत ही सुन्दर रक्त-वस्त्र पहने हुए हैं। ऐसे श्रीमारुतनन्दन हनुमानजीका मैं प्रेमविह्वल हृदयसे आश्रय लेता हूँ।

(७२)

नौमि श्रीहनुमन्तमन्तरनुरागं व्यञ्जयन्तं ध्रुवं
सिन्दूरारुणविग्रहं सहृदयाह्लादिस्मिताञ्चन्मुखम्।
अर्द्धोन्मीलितलोचनं रघुपतिं ध्यायन्तमानन्दितं
वीणोद्यत्स्वरमूर्च्छिताखिलजगच्चित्तं स्वचित्तेस्थितम्॥

(७२)

अपने अन्तर्देशमें स्थित अनुरागको निश्चत रूपसे व्यंजित करते हुए सिन्दूरके समान रक्त-वर्ण धारण करते हैं, सहृदयजनोंको आनन्द देनेवाला सुन्दर मुख और अर्द्धोन्मिलित नेत्र हैं। श्रीरघुपतिका ध्यान करके आनन्दमें मग्न हो रहे हैं। वीणाको गूंजती हुई ध्वनिके द्वारा सम्पूर्ण विश्वके चित्तको आनन्द दे रहे हैं। ऐसे, अपने चित्तमें स्थित श्रीहनुमानजीको मैं नमस्कार करता हूँ।

(७३)

कामार्थावर्थयन्तां विषयपरवशा लौकिकोत्थानमानाः,
वाञ्छन्तोऽन्तर्व्यवस्थां मरणपरसुखां धर्ममाराधयन्तु।
आकांक्षन्तश्च मोक्षं श्रुतिमतिमहितं ब्रह्मभावं विदन्तु,
हित्वा तन्नैरपेक्ष्यान्निखिलमिह वयं वायुसूनुं भजामः ॥

विषय-परवश लौकिक उत्थानको ही सब कुछ समझनेवाले अर्थ और कामकी याचना करें; अन्र्जगतकी व्यवस्था चाहनेवाले और मरणोत्तर स्वर्ग-सुखादिकी वाञ्छा करनेवाले धर्मकी आराधना करें; श्रुति और मतिसे सबकी अपेक्षा महान् मोक्ष चाहनेवाले ब्रह्मभावको जानें; उनकी अपेक्षा न होनेके कारण सबको छोड़कर हम वायुनन्दन श्रीहनुमानजीका भजन करते हैं।
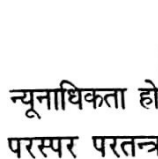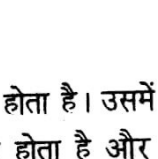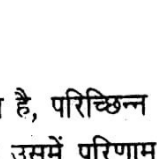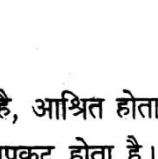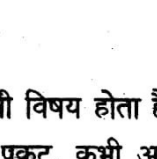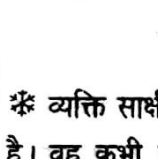
❊ व्यक्ति साक्षी विषय होता है, आश्रित होता है, परिच्छिन्न होता है। उसमें न्यूनाधिकता होती है। वह कभी प्रकट, कभी अप्रकट होता है। उसमें परिणाम होता है और परस्पर परतन्त्रता होती है। इन कारणोंसे दिव्य, अप्राकृत मूर्तियाँ भी नियम्य ही होती हैं और अन्तर्यामी उनका नियन्ता होता है। इसलिए, ज्ञानी होनेपर भी हनुमानजी हमेशा श्रीरामचन्द्रके परतन्त्र ही हैं। हनुमानजीका स्वरूप नियन्ता और नियम्य दोनोंका अधिष्ठान है, इसलिए उनमें नियम्य-नियामक भाव केवल व्यावहारिक है।
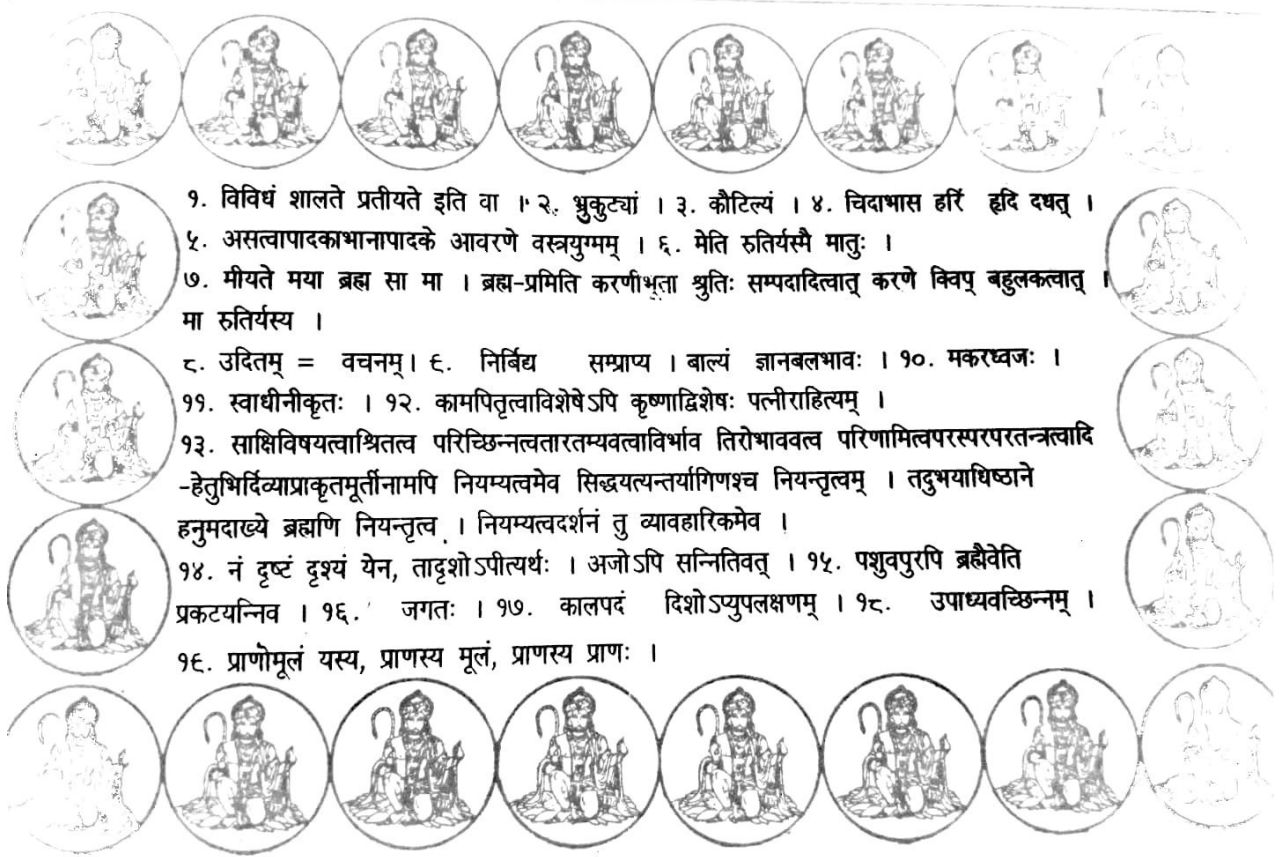
१. विविधं शालते प्रतीयते इति वा । २. भ्रुकुट्यां । ३. कौटिल्यं । ४. चिदाभास हरिं हृदि दधत् ।
५. असत्वापादकाभानापादके आवरणे वस्त्रयुग्मम् । ६. मेति रुतिर्यस्मै मातुः ।
७. मीयते मया ब्रह्म सा मा । ब्रह्म-प्रमिति करणीभूता श्रुतिः सम्पदादित्वात् करणे क्विप् बहुलकत्वात् । मा रुतिर्यस्य ।
८. उदितम् = वचनम्। ९. निर्बिद्य सम्प्राप्य । बाल्यं ज्ञानबलभावः । १०. मकरध्वजः ।
११. स्वाधीनीकृतः । १२. कामपितृत्वाविशेषेऽपि कृष्णाद्विशेषः पत्नीराहित्यम् ।
१३. साक्षिविषयत्वाश्रितत्व परिच्छिन्नत्वतारतम्यवत्वाविर्भाव तिरोभाववत्व परिणामित्वपरस्परपरतन्त्रत्वादि -हेतुभिर्दिव्याप्राकृतमूर्तीनामपि नियम्यत्वमेव सिद्धयत्यन्तर्यागिणश्च नियन्तृत्वम् । तदुभयाधिष्ठाने हनुमदाख्ये ब्रह्मणि नियन्तृत्व । नियम्यत्वदर्शनं तु व्यावहारिकमेव ।
१४. नं दृष्टं दृश्यं येन, तादृशोऽपीत्यर्थः । अजोऽपि सन्नितिवत् । १५. पशुवपुरपि ब्रह्मैवेति प्रकटयन्निव । १६. जगतः । १७. कालपदं दिशोऽप्युपलक्षणम् । १८. उपाध्यवच्छिन्नम् ।
१९. प्राणोमूलं यस्य, प्राणस्य मूलं, प्राणस्य प्राणः ।

प्र का श की य

परम पूज्य महाराजश्री द्वारा रचित यह 'श्रीहनुमत्स्तोत्र' सम्वत् २०११ में कानपुरसे मुद्रित हुआ था। इसका प्रकाशन पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्यायने करवाया था। गतवर्ष महाराजश्रीसे कुछ भक्तोंने इसके अनुवादका आग्रह किया और महाराजश्रीने शरीरकी स्थिति ठीक न होनेपर भी इन श्लोकोंका अनुवाद श्रीमती कुन्ती जालानको लिखवा दिया। बहनेके श्रमसे हम सबोंकी आज यह प्रकाशन इस रूपमें सुलभ हो रहा है।

महाराजश्रीकी अनुभूति—उनकी वाणी श्रीहनुमानजीकी कृपासे भावुक भक्तोंके लिए चमत्कारी फल-परिणाम लेकर प्रकट हुई। इसका लाभ अनेक लोगोंको मिला है। यह लोकोपकरिणी कृति आपको श्रीहनुमच्चरणोंमें रति प्रदान करेगी।

—ट्रस्टी

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट